परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वर्ष 23, अंक 1, अप्रैल 2016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

500 प्रतियां

© राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, 2016
(भारत सरकार द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 1956 की धारा 3 के अंतर्गत घोषित)

इस पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में किया जाता है। इसकी प्रतियां चुनिंदा और इच्छुक व्यक्तियों तथा संस्थानों को नि:शुल्क भेजी जाती हैं। यह न्यूपा की वेबसाइट: www.nuepa.org पर नि:शुल्क उपलब्ध है। इसे प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति और संस्थान निम्निलिखित पते पर आवेदन करें :

अकादमिक संपादक

परिप्रेक्ष्य

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा)
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) के लिए कुलसचिव, न्यूपा द्वारा प्रकाशित तथा बचन सिंह, बी-275, अवन्तिका, सेक्टर 1, रोहिणी, नई दिल्ली द्वारा लेजर टाइपसेट होकर मै. पावर प्रिन्टर्स, नई दिल्ली में न्यूपा के प्रकाशन विभाग द्वारा मुद्रित।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 23, अंक 1, अप्रैल 2016

विषय सूची

आलेख

ऋतु बाला
भारतीय शैक्षिक परिदृश्य में परीक्षा का सामाजिक चरित्र 1

बीरेन्द्र सिंह रावत
शिक्षक और शिक्षिकाओं से आलोचनात्मक होने की उम्मीद और उस उम्मीद पर खरा उतरने की चुनौती 27

राधेश्याम बघेल एवं शोभा पुरकर
शिक्षकों के आत्मविश्वास पर चेतना विकास मूल्य शिक्षा का प्रभाव 41

राजेश प्रसाद सिंह
माध्यमिक स्तर पर शिक्षार्थियों का संस्कृत शिक्षा के प्रति रुचियों, अभिवृत्तियों एवं संबद्ध कारकों का अध्ययन 53

शोध टिप्पणी / संवाद

सुधाकर प्रसाद सिंह एवं **मनीषा**
वैश्वीकरण के युग में सूचना संचार प्रौद्योगिकी एवं शैक्षिक नवाचार 69

आर.पी. पाठक
भारतीय संस्कृति में मानवमूल्य एवं मानवाधिकार 77

एस.डी. सिंह 'परिहार'
वैदिक कालीन शिक्षा में मानव जीवन मूल्यों का संपोषण 83

विजय जायसवाल एवं **एकता दूबे**
उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के गृह वातावरण तथा संज्ञानात्मक शैली का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर प्रभाव का अध्ययन 91

सुधीर कुमार एवं **स्नेहलता शिवहरे**
सामान्य एवं आरक्षित वर्ग के विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर तथा शैक्षिक निष्पत्ति की तुलना 97

चिंतक और चिंतन

प्रभात कुमार एवं **आशीष श्रीवास्तव**
कृष्णमूर्ति और टैगोर का मौलिक चिंतन और शिक्षा की वैकल्पिक व्यवस्था 127

समीक्षालेख

खगेन्द्र कुमार एवं **सुजीत कुमार**
शिक्षा की गुणवत्ता के विकास में पाठ्यपुस्तकों की भूमिका: बिहार के सरकारी सेकेंडरी स्कूलों में पढ़ाई जानेवाली अर्थशास्त्र की पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा 133

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 23, अंक 1, अप्रैल 2016

भारतीय शैक्षिक परिदृश्य में परीक्षा का सामाजिक चरित्र

ऋतु बाला*

सारांश

विद्यालयी शिक्षा के पिछले लगभग सौ बरस के इतिहास में नीतिगत स्तर पर परीक्षा एक ऐसी परिघटना मानी जा सकती है जिसकी समालोचनाएँ होती रही हैं परन्तु परीक्षा नामक परिघटना इन समालोचनाओं से बुनियादी तौर पर असंवाद की स्थिति बनाए रखने में कामयाब रही है। लेकिन पिछले दस बरसों में परीक्षा की परिघटना एक बार फिर से शैक्षिक क्रिया के ऊपरी पटल पर आ चुकी है जिसकी वज़ह परीक्षा पर लिए गए कुछ एक नीतिगत फैसले रहे हैं जैसे–2011 में दसवीं बोर्ड को वैकल्पिक बनाया जाना, फिर इसे पलटते हुए 2018 से दसवीं में पुनः बोर्ड परीक्षा की अनिवार्यता की बहाली। परीक्षा समालोचना के लगभग सौ वर्षों के इतिहास में परीक्षा की वैधता, विश्वसनीयता, उपादेयता, उसके शैक्षिक योगदान, तकनीकिगत आयाम की सीमाएँ, शिक्षा के उद्देश्य एवं अन्तर्वस्तु सहित पढ़ाने–लिखाने के तौर–तरीकों को निर्धारित करने की क्षमता, अभिभावकों सहित विद्यार्थियों पर इससे पड़ने वाले मनोभाविक दुष्प्रभाव जैसे आयामों पर तो क्रिया दिखाई देता है, परन्तु परीक्षा परिणाम के सामाजिक चरित्र की क्रिया लगभग उपेक्षित रही है। प्रस्तुत शोधपत्र का केन्द्रीय सरोकार परीक्षा के सामाजिक चरित्र की सैद्धांतिक पड़ताल करना है। दूसरे शब्दों में यह शोधपत्र परीक्षा प्रणाली में अन्तर्निहित शैक्षिक विषमता का संज्ञान, उनका रेखांकन, पड़ताल एवं विश्लेषण करते हुए, वर्ग, जाति, लिंग के आधार पर बँटे हुए समाज में दलित वंचितों को परीक्षा में सफलता के लिए मुहैया करवाए जाने वाले अवसरों की सैद्धांतिक एवं क्रियागत पड़ताल करता है।

*सहायक प्रोफेसर, केंद्रीय शिक्षा संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

परीक्षा के लिहाज से पिछले दस बरस असमंजस एवं विरोधाभास से भरे हुए रहे हैं। वह इस तरह से कि 2011 में एक ऐतिहासिक निर्णय के तहत दसवीं कक्षा के लिए बोर्ड परीक्षा को वैकल्पिक बना दिया गया। वहीं सिर्फ पाँच-छः वर्षों में इसे पलट कर 2018 से दसवीं के परीक्षार्थियों के लिए फिर से अनिवार्य करने का फैसला आ गया है। दोनों ही फैसलों के अपने-अपने तर्क हैं (जनसत्ता 2016क एवं 2016ख, हिन्दुस्तान 2016 संपादकीय, कुमार 2016, द हिन्दु 2016, सम्पादकीय, शहजाद 2016, सद्गोपाल 2017)। दसवीं के लिए बोर्ड की परीक्षा को वैकल्पिक बनाने का तर्क प्रमुख रूप से यह दिया जाता रहा है कि इससे विद्यार्थियों का परीक्षा जनित तनाव, अवसाद तथा इसके प्रभाव से होने वाली बीमारियों एवं प्रभावों को कम किया जा सकेगा। वहीं दूसरे फैसले के पीछे का प्रमुख तर्क यह है कि परीक्षा की फिर से बहाली करने से विद्यार्थी एवं शिक्षक जिम्मेवारी महसूस करते हुए पढ़ाई-लिखाई के प्रति संजीदा होंगे और इससे शिक्षा में गिरती हुई गुणवत्ता को कुछ दूर तक थामा जा सकता है। ध्यातव्य है कि पहले वाले फैसले के पीछे भी तर्क गुणवत्ता का ही था, वह ऐसे कि विद्यार्थी दसवीं बोर्ड में होने वाले तनाव से बचते हुए सीखने का मजा ले पाएगा जिससे गुणवत्ता हासिल हो सकेगी।

ध्यातव्य है कि परीक्षा संबंधित, इस शैक्षिक क्रिया में परीक्षा प्रणाली में अन्तर्निहित शैक्षिक विषमता का संज्ञान, उनका रेखांकन, पड़ताल एवं विश्लेषण अपवाद स्वरूप भी देखने को नहीं मिलता है। मतलब यह कि परीक्षा प्रणाली वर्ग, जाति, लिंग के आधार पर बँटे हुए समाज में दलित वंचितों के लिए परीक्षा में सफलता के क्या वही समान अवसर मुहैय्या कराती है जो कि लिंग, जाति, वर्ग के आधार पर अग्रिम माने जाने वाली श्रेणियों को मुहैय्या कराती है। इसके स्थूल प्रमाण के तौर पर कोबसे एवं मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा दसवीं एवं बारहवीं बोर्ड परीक्षाओं पर निकलने वाली रपटों के रूप में देखा जा सकता है। इन रपटों में अनुसूचित जाति/जनजाति एवं महिलाओं के परीक्षा परिणामों को तो अलग से देखा जा सकता है परन्तु विषमता की एक मोटी श्रेणी ग्रामीण बनाम शहरी के आधार पर परीक्षा के चरित्र की पहचान नहीं की जा सकती।

अमूमन परीक्षा अपने संबंध में जनमानस एवं काफी दूर तक अकादमिक हलकों में भी यह छाप छोड़ने में सफल रही है कि वह निरपेक्ष, वस्तुनिष्ठ, सबके लिए समान, न्यायकारी, समतावादी, भाई-भतीजावाद के सामन्ती लक्षणों से लड़ने

वाली समाज के निचले पायदान के लोगों को प्रतिभा के आधार पर ऊर्ध्वाधर गतिशीलता देने वाली है। ऐसे में यह प्रासंगिक है कि परीक्षा के सामाजिक चरित्र की शिनाख्त की जाए। यह इसलिए भी प्रांसगिक है क्योंकि अकादमिक जगत में यह प्रश्न लगभग उपेक्षित-सा रहा है।

शिक्षाशास्त्र के इतिहास में नीतिगत दस्तावेज़ों को छोड़कर अगर परीक्षा विषयक विचार-क्रिया की अवस्थिति देखी जाए तो कहा जा सकता है कि परीक्षा की क्रिया एक उपेक्षित क्रिया रही है। परीक्षा पर समाज केवल दो वक्त पर ही बा-खबर दिखता है। एक जब 10वीं एवं 12वीं बोर्ड की परीक्षा की घोषणा होती है तब और दूसरा उसका परिणाम घोषित होता है तब। पर यह दोनों वक्त सामान्य न होकर असामान्य वक्त माने जाते हैं। परीक्षा घोषणा का समय मनोवैज्ञानिक दवाबों की वज़ह से चर्चा में रहता आया है, इस क्षण का इस्तेमाल जनमाध्यम अपनी हितैषी की छवि बनाने के लिए भी करते आए हैं। वह उससे निपटने का टिप्स देने में अपने पन्ने खर्च करते हैं। परीक्षा एक बार फिर तब चर्चा में आती है जब उसका परिणाम घोषित होता है क्योंकि यह वह वक्त होता है जिसमें परीक्षा जनित कुण्ठा, हताशा से आत्महत्याएँ होती हैं। दो-चार दिन इस पर भी खबर आती है कि कहाँ के विद्यार्थियों ने, कौन-से स्कूल ने, बाजी मारी और किसका परिणाम फिसड्डी रहा। इसके अलावा साल भर जनमाध्यम एवं शैक्षिक पत्र-पत्रिकाएँ इस संबंध में तन्द्रा की स्थिति में होती हैं।

परीक्षा की वैधता एवं विश्वसनीयता को कायम करने, बाह्य/लिखित परीक्षा के वर्चस्व को खत्म/कम करने, बौद्धिकता/पांडित्य/विद्वता के पक्ष तक सीमित परीक्षा को उससे निकालकर, उसे शिक्षा के अन्य आयामों तक ले जाने, परीक्षा में सतत, व्यापक एवं संचयी मूल्यांकन को शामिल करने, परीक्षा का विकेंद्रीकरण करने, परीक्षा को विद्यार्थी केंद्रित बनाने, जाँचकर्ता के रूप में परीक्षा की भूमिका को बदलकर उसे फैसिलीटेटर की भूमिका की ओर ले जाने, परीक्षा परिणाम पत्र को सार्थक बनाने, मूल्यांकन प्रक्रिया का सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के साथ एकीकरण पर क्रिया देखने को मिलता है।

विभिन्न समयों पर गठित भिन्न-भिन्न आयोगों और समितियों की रपटों में शिक्षा के मुद्दों पर होने वाली बैठकों, सम्मेलनों तथा परीक्षा पर लिखे अकादमिक लेखों में परीक्षा पर कुछ चर्चा परिचर्चा जरूर देखने को मिलती हैं। उपरोक्त जगहों में शिक्षा पर परीक्षा का अनाधिकार कब्जा, उसका बढ़ता हुआ गैर शैक्षिक चरित्र एवं

ऊँची होती हैसियत का रेखांकन इसमें मिलता है (आडवाणी, 2016)। शिक्षा समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से अगर देखें तो इस समूची चर्चा-परिचर्चा की एक सीमा उभर कर आती है। सीमा यह कि उपरोक्त क्रिया में परीक्षा के सामाजिक चरित्र की क्रिया लगभग नदारद है। उपरोक्त क्रिया इन सवालों पर खामोश रहता है कि क्या परीक्षा साधन सम्पन्न अभिजात्य, शहरी, विद्यार्थियों एवं समाज के ग्रामीण, अल्पसंख्यक, दलित पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों के लिए समान बर्ताव वाली है अथवा हैसियत के आधार पर विषमतापूर्ण बर्ताव वाली। चेतना के इस अभाव को कुमार (20, 2005) इस प्रकार उभारते हैं कि आज देश के पास यह मोटा-सा आंकड़ा उपलब्ध नहीं है कि बोर्ड परीक्षा (10वीं एवं 12वीं) में ग्रामीण स्कूलों का पास प्रतिशत शहरी इलाकों के मुकाबले कितना कम रहा।

सन् 2006 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने परीक्षा प्रणाली में सुधार को व्यवस्थागत सुधार का विषय मानते हुए उस पर एक आधार पत्र (2008) प्रकाशित किया। इस आधार पत्र में विस्तार से परीक्षा के विभिन्न आयामों का विश्लेषण किया गया है। इसमें परीक्षा के शैक्षिक चरित्र पर गहन विवेचन तो मिलता ही है वह परीक्षा परिणामों को अविकसित इलाकों के विद्यार्थियों के लिए न्यायपूर्ण बनाने के संबंध में उपाय भी सुझाता है।

परीक्षा नामक परिघटना का समाजो-आर्थिक संदर्भ एवं उसका अपना निहित वर्गीय हित क्या है, परीक्षा में असफल होने वाले विद्यार्थियों की बुनियादी पहचान क्या है, यानि व्यापक अर्थों में परीक्षा का सामाजिक दर्शन क्या है। इन सभी मुद्दों पर अभी तक के विचार क्रिया की पड़ताल करने के लिए हमें भारत के वैचारिक भूगोल से बाहर निकलना होगा। इस शोध में ऐसी कुछ पुस्तकों को भी संदर्भित किया जा रहा है जिनका वैचारिक भूगोल यूरोप का रहा है।

समय-समय पर गठित आयोगों, समितियों, बैठकों तथा सम्मेलनों के साथ-साथ इसके बाहर भी परीक्षा पर जो क्रिया हुआ है, उसे यहाँ अध्ययन की विषयवस्तु बनाया जा रहा है। परीक्षा का उद्भव किन ऐतिहासिक, समाजो-आर्थिक परिस्थिति में हुआ उसकी ऐतिहासिक भूमिक क्या रही – शैक्षिक एवं शिक्षेत्तर – उसने विभिन्न वर्गों के साथ कैसा बर्ताव किया। इन पर यहाँ विस्तार से क्रिया- चर्चा की जा रही है। परीक्षा से संबंधित साहित्य की क्रिया को सुविधा के लिहाज से यहाँ निम्न तीन शीर्षकों के अन्तर्गत रखकर देखा जा रहा है:

- परीक्षा के पक्ष तथा विपक्ष में प्रस्तुत परीक्षा का समाज दर्शन–I
- परीक्षा नामक परिघटना का समाजो–आर्थिक संबंध एवं उसमें निहित हित–II
- फेल होने वाले विद्यार्थी की बुनियादी पहचान के प्रति उदासीनता–III

परीक्षा के पक्ष एवं विपक्ष में प्रस्तुत परीक्षा का समाज दर्शन

भारत के शैक्षिक परिदृश्य में परीक्षा नामक परिघटना का आगमन औपनिवेशिक विरासत की देन है। इसलिए अगर हमें परीक्षा के पनपने के पीछे की समाजो–सांस्कृतिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनैतिक जमीन को देखना है तो स्वाभाविक रूप से वैचारिक एवं भौतिक भूगोल से निकलकर वहां जाना होगा जहां यह परीक्षा नामक परिघटना जन्मी, पल्लवित एवं विकसित हुई। इसके साथ ही परीक्षा नामक इस परिघटना की क्रियागत् पड़ताल की भी मांग है कि हम भारत के क्रियागत भूगोल से बाहर निकलें। अत: उपरोक्त सरोकारों के मद्देनज़र परीक्षा नामक परिघटना की समाजो–सांस्कृतिक, राजनैतिक, अर्थशास्त्रीय शैक्षिक एवं क्रियागत पहचान के लिए यहां यूरोप का संदर्भ एवं उसके विचार का आना नैसर्गिक है। परीक्षा द्वारा निभाई जाने वाली सामाजिक भूमिका का गहरा एवं विस्तृत स्वरूप ब्रॉडफूट (1979) तथा मैथ्यू (1985) में देखा जा सकता है। दोनों लेखकों ने परीक्षा के जन्म से लेकर उसके राष्ट्र राज्यों की सीमाओं को लांघ कर अपनी स्वीकार्यता बनाने के पीछे की कहानी और उसके सामाजिक आर्थिक हित एवं दर्शन को खंगाला है।

मैथ्यू (1985) का मानना है कि राजनैतिक, व्यापारिक, साम्राज्यवादी और खेल जैसे क्षेत्र में जो प्रतियोगिता व्यापक तौर पर फैली हुई थी उसने परीक्षा नामक परिघटना को उत्प्रेरणा और ऊर्जा दी। 19वीं शताब्दी में सभी स्तरों पर परीक्षा की परिघटना में जो बढ़त आई उसके पीछे जो चालाक ताकत काम कर रही थी उसकी प्रकृति डार्विनियन थी। निम्न पादान के लोगों के संदर्भ में प्रतियोगिताओं में अकादमिक तथा गैर अकादमिक–सामाजिक बाधाएँ ऊँची थीं। कामगार तबका उच्च शिक्षा में प्रवेश तो पा सकता था पर उसकी संख्या दुर्लभ थी। पैसे रुपयों की कमी, अवकाश की अनुपलब्धता कामगार तबकों के लिए यह असम्भव कर देती थीं कि वे अकादमिक और गैर–अकादमिक क्षेत्रों में समाज के अन्य लोगों के साथ कोई बराबरी कर सकें।

उदारवादी लोकतंत्रों तथा समाजवादी राज्यों में जनसामान्य की प्रगति एवं विकास के लिए जहाँ समान अवसरों को पैदा करने का सरोकार है वहीं दूसरी जगहों पर इस बात पर जोर है कि ऐसे व्यक्तियों को बहुत जल्द एवं सक्षमता के साथ तैयार किया जाए जो न केवल राष्ट्रीय बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक घमासान में समाज का नेतृत्व

कर सकें। ऊँच-नीच वाले पदक्रम आधारित औद्योगिक समाज में अभिजात्य को प्रत्यक्ष तथा अनिवार्य स्थान दिया जाता है इस संदर्भ में शैक्षिक आकलन की दोहरी भूमिका की पहचान करना महत्वपूर्ण है।

शैक्षिक आकलन अभिजात्यों को पहचान प्रदान करने तथा उन्हें लगातार बढ़त दिलाने का काम करता रहा है। पर इसके साथ ही हमें यह भी पहचानना होगा कि शैक्षणिक आकलन अभिजात्यों के लिए ज्यादा जगह पैदा करने एवं उन्हें अच्छी-खासी पहुँच देने का औजार रहा है, यानी यह केवल अभी की परिघटना नहीं है।

लेखक ने परीक्षा एवं मूल्यांकन को 'इंग्लैण्ड तथा वेल्स' के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा है उनका मानना है कि शैक्षणिक उपाधि की जड़ 19वीं शताब्दी के औद्योगिक पूँजीवाद और राजनैतिक लोकतंत्र में पायी जा सकती है। लेखक उपरोक्त स्थान के सन्दर्भ में बनी संपर्क कमिटी की रपट (The Consultative Committee Report) 1911 के महत्वपूर्ण निष्कर्ष पर ध्यान दिलाता है। रपट लोगों पर परीक्षा के प्रभावों के बारे में विचार-क्रिया करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि यह महज दिमाग की सक्रियता, प्रतियोगिता तथा धनलोलुपता पैदा कर रही है इसके विपरीत वह स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता, सृजनात्मक चिंतन, सच्चा प्रामाणिक अधिगम तथा आलोचना को प्रोत्साहित नहीं कर रही है (ब्राडॅफूट, 1979)। अक्रियता को बढ़ावा देना, चले आ रहे ज्ञान, मूल्य तथा मानक की स्वीकृति, अभिजात्य जगहों में प्रवेश पर सीमा बांधने और सामाजिक नियंत्रण के साधन के रूप में आकलन की महत्ता है, ये सभी सामाजिक पुनरुत्पादन की प्रक्रिया के महत्वपूर्ण साधन हैं।

जनस्कूलों के संबंध में यह माना गया है कि उसका बर्ताव ऐसा नहीं होना चाहिए जिससे कि लोग अपनी जिंदगी के जिस भी पड़ाव पर हों उसी को सवाल के घेरे में लाने लग जाएँ। और न ही अपने से बेहतरों द्वारा स्थापित मानकों (स्तरों) से अपनी तुलना करने लग जाएँ। बल्कि इसकी जगह होना यह चाहिए कि आकलन व्यवस्थित एवं नियंत्रित करने का वह तौर-तरीका विकसित करे जिससे नैतिकता एवं उद्यमशीलता को बढ़ावा मिले। परीक्षा की विषयवस्तु एवं रूप स्कूलों को ऐसा जकड़ जामा मुहैय्या करवाता है जिससे कि स्कूल प्रमाणपत्र पाने वाले विद्यार्थियों की संख्या को सीमित कर सकें। स्कूलों से सफलता प्राप्त करके निकलने वाले वे विद्यार्थी हुआ करते हैं जो स्कूल प्रमाणपत्र हासिल करने के लिए विद्यालयों के मूल्य स्वीकार करने और मौजूदा ज्ञान के रूपों को पुनरूत्पादित करने के लिए तैयार होते हैं (ब्राडफूट, 1979)।

परीक्षा, केवल पास करने के लिहाज से महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि चयन पर ज़ोर देने के कारण महत्वपूर्ण है। परीक्षा के जरिए शिक्षा में यह पूँजीवादी दर्शन इस तर्क के साथ लाया गया कि प्रतियोगिता के जरिए उत्पादन की गुणवत्ता को बढ़ाया जा सकता है। पास होने का कठिनाई स्तर तथा फेल होने की दर बढ़ाकर परीक्षा, गुणवत्ता का मानक साबित करती है। लेखक एक अन्य लेखक कैली के माध्यम से ध्यान दिलाते हैं कि विद्यार्थियों की क्षमताओं को अकादमिक एवं गैर-अकादमिक विषयों के समूह में बांट कर देखा जाता है। यह इसलिए कि दो प्रमाणपत्रों को असमान रूप से मापा जाए। सुई-धागे के काम के मुकाबले भौतिकी में O स्तर/श्रेणी लाना कठिन माना जाता है। इसका कारण यह है कि भौतिकी में बहुत कम लोग उत्तीर्ण होते है।

परीक्षा के जरिए पैदा हुए बारीक विभेदीकरण एवं और अधिक विशेषीकरण ने अर्थव्यवस्था में विभिन्न तरीके की विशेषज्ञता की बढ़ रही जरूरतों को पूरा किया। इससे लोगों के बीच सामाजिक पुनर्रुत्पादन के लिए 'श्रम का विभाजन' पैदा हुआ जिसके परिणाम महत्वपूर्ण साबित हुए।

वाउल्स एवं जिन्टिस (1976) तर्क देते हुए कहते हैं कि इस स्थिति ने शिक्षा में 'विभाजन और शासन' के सिद्धान्त को प्रवेश दिलाया जिसका परिणाम विखण्डीकरण में हुआ, जिसके कारण एकता तथा अप्रभावित रहने वाली स्वचेतना के बनने की प्रक्रिया थम गई (ब्राडफूट, 1979)।

बोर्द्यू एवं पैसंरान (1976) के अनुसार इसने अभिजात्यों के लिए वह मौका दिया जिससे कि वे अपने आपको पुनरुत्पादित कर सकें। उन्होंने अपनी संस्कृति के आंशिक भाग से बने कुछ सूक्ष्म एवं उच्च विषयों को पहचाना और उसके जरिए अपना पुनरुत्पादन किया। ये विषय अकादमिक जगत में ऊँची हैसियत वाले माने जाते थे (ब्राडफूट, 1979)।

इस तरह ये विषय घरेलू पृष्ठभूमि में खास भाषिक एवं बौद्धिक कौशल के उत्पाद थे। इन्हें बोर्द्यू तथा पैसॅरान ने 'सांस्कृतिक पूँजी' के तौर पर परिभाषित किया। इसी 'सांस्कृतिक पूँजी' की बदौलत अभिजात्य दूसरी पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों से बेहतर निष्पादन करते थे। इन विषयों में सफलता का ज्यादा वस्तुगत मूल्य रोजगार बाज़ार तथा विश्वविद्यालयों में था।

पार्टरिज (1968) यह तर्क करते हैं कि बाह्य परीक्षाओं में कम लोगों को कम्पीट करने का अवसर देने का मतलब है कि - बहुसंख्यक के शैक्षिक अनुभवों को अनिवार्य रूप से कुचलना (ब्राडफूट, 1979)।

लेखक का मानना है कि शिक्षा को पहले से ही शक्ति संरचना, अर्थतंत्र एवं सामाजिक स्थितियों में बढ़त बनाए हुए लोगों के पक्ष में जवाबदेह बनाया गया और यह काम आकलन के प्रचलित तौर-तरीकों के जरिए हुआ।

नियंत्रण के सवाल को यहाँ दो शीर्षकों में बांट कर देखा जा सकता है। पहला स्कूली व्यवस्था का नियंत्रण - खासकर पाठ्यचर्या और संगठन के सन्दर्भ में ताकि अर्थतंत्र की जरूरतों के अनुसार उपयुक्त रूप से प्रशिक्षित एवं सामाजीकृत व्यक्तियों के उत्पादन को सुनिश्चित किया जा सके। दूसरा व्यक्तियों का नियंत्रण ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे यथास्थिति के प्रति प्रतिबद्ध रह सकें तथा अपनी सफलता और असफलता को न्यायपूर्ण शैक्षिक व्यवस्था के प्रतिपादन के रूप में देख सकें।

मस्गनेम (1968) यह तर्क देते हैं - कि उत्पादन के तरीकों में मूलगामी आर्थिक परिवर्तनों ने 19वीं शताब्दी में शिक्षा पर जबर्दस्त प्रभाव डाला। नतीजतन वर्ग विभाजन के आधार में परिवर्तन हुआ। इस स्थिति में अभिजात्यों को यह जरूरत हुई कि वे अपनी सुविधापूर्ण स्थिति को बरकरार रखने तथा उन्हें न्यायोचित्त ठहराने के लिए नए रास्ते तलाशें (ब्राडफूट, 1979)।

विलियम्स परीक्षा के प्रयोग के सरोकार को 'द पुल ऑफ एबिलिटी' के नाम से सम्बोधित करते हैं। राइस एवं वेल्पफ ने इसे 'क्षमता पकड़ मशीन' के नाम से पुकारा है (ब्राडफूट, 1979)।

1950 के आसपास शोधों की श्रृंखला (Halsay and Gandnon, 1953; Yates and Pidgean, 1957; Siman, 1953) ने इस विचार को गहरा धक्का पहुँचाया कि बुद्धि अन्तस्थ तथा निश्चित होती है। इन शोधों का प्रभाव यह हुआ कि बुद्धि के उपरोक्त विचार का आलोचनाओं से बचाव किया जाना संभव नहीं रहा। इन शोधों के जरिए यह साबित हुआ कि बुद्धि पर अन्य कारकों के साथ सामाजिक वर्ग और वातावरणीय कारक गहरा प्रभाव डालते हैं (ब्राडफूट, 1979)।

बाउल्स एवं जिन्टिस (1976) का कहना है कि शिक्षा तंत्र आर्थिक असमानता को वैधानिकता प्रदान करता है। और यह काम वह खुले, वस्तुनिष्ठ तथा प्रत्यक्ष प्रतिभाशाही तंत्र के जरिए व्यक्तियों का आकलन करके उन्हें असमान आर्थिक पदों पर अनुबंधित करते हुए करता है (ब्राडफूट, 1979)।

चॉम्स्की का बलपूर्वक कहना है कि बुद्धि परीक्षा में वर्गीय असमानता के निरंतैर्य को छुपाए रखने की क्षमता होती है और यही उसका महत्वपूर्ण कार्य भी है (पिछले

पचास वर्षों से वह यह बड़ी सफलता से करती भी आई है)। बुद्धि परीक्षा इतने अच्छे तरीके से ताकत को ढाँप लेती है कि वह किसी वास्तविक क्रांतिकारी विरोध को प्रभावकारी तरीके से असंगठित कर देती है।

आकलन प्रक्रियाओं के सुधार पर बहस, इस बहस के बीच में रहने वाले तनाव को दर्शाती है। उदाहरण के लिए उद्योग के द्वारा परिभाषित शैक्षिक उद्देश्य एवं शिक्षकों के द्वारा परिभाषित शैक्षिक उद्देश्य या फिर अभिजात्य तथा उदारवादी सुधारक के बीच व्याप्त तनाव।

यह देखा जाता है कि प्राथमिक और प्रारम्भिक स्कूलों ने माध्यमिक स्कूल चयन परीक्षा में विद्यार्थियों को ठूसने का काम किया है। इससे बचने के लिए जरूरी था कि स्कूलों को पुनः गठित किया जाए और चयन को रोका जाए पर इन दोनों ही प्रक्रियाओं ने विद्यालय की उस प्रवृत्ति में सुधार नहीं किया जिसमें वर्गीय सामाजिक हैसियत की पृष्ठभूमि के अनुसार विद्यार्थियों को विभिन्न चैनलस् में स्थापित किया जाता है।

इस्कस्टीयन एवं नोह (1989) आठ देशों– इंग्लैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, जापान, चीन, स्वीडेन, सोवियत यूनियन और यूनाइटेड स्टेट में परीक्षा पद्धति के गहन अध्ययन के आधार पर यह पाते हैं कि परीक्षा का सबसे महत्वपूर्ण काम है उत्तर माध्यमिक विद्यालय की गतिविधियों में नवयुवकों के प्रवाह को रोकना। सामान्य तौर पर उनकी संख्या को सीमित करना और विशेष तौर पर उनको अध्ययन, प्रशिक्षण तथा काम के विभिन्न स्तरों पर बांटना। माध्यमिक स्कूल के बाद की मांग के अनुसार वांछिततम अवसर हर समूह में सीमित ही होते हैं। इसलिए हाईस्कूल के किस विद्यार्थी को पुरस्कृत करना है और किसे नहीं, परीक्षा इसका राजनैतिक तथा नैतिक रूप से स्वीकृत रक्षणीय मार्ग बन जाता है। उपरोक्त आठ देशों के अध्ययन के आधार पर लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि परीक्षा आखिरकार विद्यार्थी प्रवाह को निर्देशित करने का काम करती है। लेखक आगे कहता है कि ऐसे किसी आधुनिक या आधुनिक होते हुए राष्ट्र का नाम लेना मुश्किल है जो विद्यार्थियों के प्रवाह को रोकने के लिए इस तरह की अथवा उस तरह की यानी किसी न किसी तरह की राष्ट्रीय परीक्षा व्यवस्था पर निर्भर न रहते हों। यहाँ तक कि यूनाईटेड स्टेट में जहाँ कुछ ही स्टेट माध्यमिक परीक्षा लेते हैं वहाँ भी इस अन्तर्राष्ट्रीय अभ्यास की ओर बढ़ने के संकेत मिल रहे हैं।

संरचनात्मक-प्रकार्यवादी तथा संघर्ष एवं नियंत्रण के सिद्धांतकार मानते हैं कि व्यावसायिक पदक्रम (ऊँच-नीच पर आधारित) की विभिन्न श्रृंखलाओं में युवाओं को

डालने के लिए पहचान की जाती है तथा इसके लिए उनको तैयार करने का काम प्राथमिक एवं द्वितीयक समाजीकरण के जरिए होता है। ध्यातव्य है कि शिक्षा इसमें महत्वपूर्ण कारक की भूमिका अदा करती है। आकलन पर मौजूद विचारों को यहां दो परिप्रेक्ष्यों में वर्गीकृत करके देखा जा सकता है। दोनों ही परिप्रेक्ष्यों में बुनियादी फर्क है। यह फर्क समाज में स्कूलिंग की भूमिका को लेकर है। मायने यह है कि क्या शिक्षा प्रणाली को वैसी प्रणाली के रूप में देखा जा रहा है जो एक तार्किक तथा न्यायप्रिय ढंग से सम्पूर्ण समाज के लाभ के लिए काम कर रही है या फिर उसे उस प्रणाली की तरह से देखा जा रहा है जो दमन के औजार के रूप में काम कर रही है जिसका 'संगठन' पद्धति, विषयवस्तु (शिक्षा के) एवं साज-सज्जा इस रूप में तैयार की गई है ताकि वह वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को पुनरुत्पादित करे साथ में इसके लिए जरूरी, सामाजिक एवं आर्थिक संबंधों को भी मजबूत करे (विलियम्स, 1977, ब्राडफूट, 1979 में उल्लिखित)।

इधर के वर्षों में शिक्षा समाजशास्त्री, 'दुर्खीम' प्रेरित प्रकार्यवादी नजरिए से दूर हट रहे हैं। कारण यह है कि शिक्षा में वृहद्/व्यापक तथा पूरक जैसी पहलकदमियों के बावजूद शैक्षिक उपलब्धि में व्याप्त असमानताएँ इन पहलकदमियों से सकारात्मक संबंध नहीं दिखा पा रही हैं। वे आगे वैकल्पिक संघर्ष नजरिया (कन्फ्लीक्ट) पेश करते हैं। इस नजरिए के अनुसार शैक्षिक पहलकदमियों की असफलता का कारण वर्चस्वशाली वर्ग की उस इच्छा को ठहराया जाता है जिसके तहत वह अपने आप को पुनर्प्रजनित करना चाहता है और वहीं दूसरी तरफ असंतोष का गला घोंटना और सामाजिक व्यवस्था को नियंत्रित करना चाहता है।

कुमार (1988) का कहना है कि पूरा का पूरा सेटअप यह भान देने के लिए होता है कि परीक्षा प्रणाली पूरी तरह से निष्पक्ष है और यह पूरी तरह से सभी को एक समान अवसर देती है। उनका कहना है कि इस तरह परीक्षा के मंच पर सभी तरह की सामाजिक पृष्ठभूमि जनित भिन्नताएँ मिटा दी जाती हैं। इसमें यह ढक जाता है कि कौन-सा परीक्षार्थी किस तरह की सुविधा और किस तरह की सुविधाविहीनता एवं विषम परिस्थिति से पढ़कर आया है। परीक्षा में किसी के लिए विशेष सुविधा अथवा संसाधन नहीं होते भले ही इसमें कुछ अतिसुविधा संपन्नता से आए हों और अन्य कई स्तर की असुविधा झेलकर। परीक्षा के तीन घंटों में सभी अकेले होते हैं और सभी प्रत्यक्ष रूप से दिखने वाली निष्पक्षता के तहत एक दूसरे से होड़ कर रहे होते हैं। इस प्रकार यह प्रतिभाशाही के बुनियादी सिद्धांत पर चल रही होती है। इस तरह परीक्षा

सामाजिक संरचना तथा शिक्षा व्यवस्था में निहित विभाजन को छुपा ले जाती है। एक अन्य लेख (2000) में लेखक कहते हैं कि ''वह एक विशाल मोटी चादर की तरह हर तरह की गैर-बराबरी और विविधता को ढांप देती है। इम्तिहान के उन जालिम तीन घंटों की स्तब्धता में इतनी शक्ति होती है कि करोड़ों लोग एकदम अलग परिस्थितियों में जिए जा रहे बचपन की असलियत भूल जाएँ। अघाय और कुपोषित, कोठीवाले और झुग्गीवासी सब बाइस पसेरी के हिसाब से तुल जाते हैं। यह सामाजिक तौर पर पिछड़े एवं गरीबों में अयथार्थ आशा जगाती है।'' लेखक यह ध्यान दिलाते हैं कि जड़ जमाए हुई जाति व्यवस्था में एक ओर वैयक्तिकता के लिए कोई जगह नहीं है वहीं पर परीक्षा प्रणाली सफलता एवं असफलता को निहायत व्यक्तिगत बनाती है। एक बच्चा जिसके पास नक्शा तक नहीं है, एक ऐसे बच्चे से स्पर्धा में झोंक दिया जाता है जो एटलस भी इंटरनेट पर देखता है। स्पर्धा को निष्पक्षता का जामा पहनाने के लिए दोनों बच्चों के नाम और पते हटाकर सिर्फ रोल नम्बर रहने दिया जाता है।

लेखक (1985) अपने एक अन्य लेख में यह ध्यान दिलाते हैं कि भारतीय शिक्षा में जो आरंभ से ही चयन की व्यवस्था है वह यह सुनिश्चित कर देती है कि उसे विशेष बर्ताव मिलेगा जो शुरू से ही पैसा लगाने की स्थिति में है। यानी जो सम्पन्न वर्ग के विद्यार्थी हैं उनका अच्छे पब्लिक स्कूल में पहले ही चयन हो जाता है। औद्योगिक शब्दावली में कहें तो जो अच्छी पूँजी लगा पाते हैं उन्हें विशेष शैक्षिक बर्ताव मिल जाता है जिसका प्रतिफलन परीक्षा की सफलता-असफलता में झलकता है जबकि दूसरी ओर जन-परीक्षा संपूर्ण बराबरी का वायदा करती है। पूर्वचयन तथा जनपरीक्षा दो परस्पर विरोधी विशेषताएँ मिलकर शिक्षा व्यवस्था की वैधता को पुष्ट करती हैं। जबकि पूर्व चयन की विशेषता वाले निजी स्कूल यह सुनिश्चित करते हैं कि समाज के अभिजात्य तबके के पास वो संसाधन हैं जिसके सहारे वे अपने बच्चों को विशेष सुविधा वाला बर्ताव दे सकते हैं। निजी विद्यालयों द्वारा चलाई जाने वाली पूर्व चयन की रणनीति उच्च प्रतिष्ठा वाले पेशों पर अभिजात्य बच्चों को पहुँचाने का सुरक्षित रास्ता देती आ रही है। जो शेष रह जाता है, बच जाता है परीक्षा उसे शेष समाज को पेश करती है और साथ में यह आश्वासन भी देती है कि प्रतिष्ठा प्रतियोगिता के जरिए हासिल की जा सकती हैं।

कुछ चिन्तक परीक्षा की परिघटना को सामाजिक व्यवहार का केन्द्रीय अंग मानते हैं। वह इस तरह से कि जिस प्रकार हम किताब, टेलीविजन के कार्यक्रमों, भवनों, फर्नीचर जैसे उत्पादों तथा अपने दोस्तों के कपड़े, उनके क्रियाकलापों और उनके

विश्वासों पर, विशेषज्ञों के द्वारा फैसले देते हैं। ये विशेषज्ञ, क्षेत्र विशेष में बढ़त लिए हुए सामाजिक मूल्यों के आधार पर अपने फैसले देते हैं। इसके सहारे निष्पादन की ख़ास गुणवत्ता की देखरेख और उसका नियमन किया जाता है। एक प्रकार से यह उस बढ़त लिए हुए सामाजिक मूल्य को ही सुनिश्चित करने वाला मूल्यांकन होता है। इसी तर्ज पर विद्यालय में शिक्षक एक शैक्षिक आलोचक की तरह काम करता है और सहमत मानकों के अनुसार शैक्षिक निष्पादन का मूल्यांकन करता है।

हेक्सटॉल एवं सरूप (1977) ने मूल्यांकन के वैज्ञानिक होने के दावे को खारिज किया है। तर्क यह है कि स्कूल में सम्पन्न किए जाने वाले सभी आकलन किसी खास आर्थिक संरचना तथा राजनीतिक व्यवस्था में अन्तर्निहित मूल्यों तथा मानकों का एक विशिष्ट एवं एकीकृत समुच्चय होते हैं। इस तरह लेखक यह तर्क करते हैं कि आकलन कभी भी केवल तकनीकी क्रियाकलाप नहीं है बल्कि वह अनिवार्य रूप से एक राजनैतिक कर्म है। इस तरह लेखक उदार सुधारवादी परंपरा के 'सामाजिक सहमति के नमूने' का खण्डन करता है। इस परंपरा में यह माना जाता है कि शिक्षा तंत्र किसी खास रूचि के समूह की जगह सभी के हित में काम करता है। लेखक मानते हैं कि आकलन की रूपरेखा, विषयवस्तु एवं ज्ञान के उत्पादन तथा सम्प्रेषण में व्याप्त वर्ग विभेद को दर्शाता है।

बोर्द्यू (1974) जैसे समाजशास्त्रियों का तर्क है कि औद्योगिककृत राष्ट्रों के स्तरीकृत समाज में जनसाधारण तथा उच्च हित साधन वाले लोगों के बीच अन्तर करने के लिए ताकतवर समूह, शिक्षा प्रणाली पर एक खास तरह की रेटिंग कसौटी थोपते हैं। यह रेटिंग कसौटी ऊपरी तौर पर तो स्वेच्छाचारी सी दिखती है। पर यह रेटिंग कसौटी उन विशेषताओं को बतलाती है जिस पर ताकतवर समूह की ताकत टिकी होती है। यह रेटिंग कसौटी गैर-ताकतवर वर्ग से आए विद्यार्थियों की सफलता के रास्ते में रोड़े अटकाती हैं। यह कसौटी सामान्यतया तयशुदा अकादमिक तथा विशेष तौर पर भाषिक उपलब्धि पर टिकी होती है। अनौपचारिक तौर पर यह कसौटी प्रायः बोल-चाल, पहनावा तथा अन्य सामाजिक व्यवहारों को भी अपने में शामिल कर लेती है (ब्रॉडफूट, 1979)।

किस तरह आकलन करें - इस मुद्दे की गंभीरता इस बात से तय होती है कि आकलन के लिए प्रयुक्त तकनीक का प्रभाव क्या है। उदाहरण के लिए हम इस पर विचार कर सकते हैं कि परीक्षा में दीर्घ निबंध वाले प्रश्न तथा निरंतर आंकलन की

प्रक्रिया संभवतया एक खास तरह के वर्ग आधारित भाषिक क्षमता वाले विद्यार्थियों के पक्ष में बैठती है (वही)।

शैक्षिक अभ्यासों तथा वृहत्तर समाज में प्रमाणपत्रीकरण की महत्ता इस बात से उभरती है कि वह द्वारपाल की भूमिका अदा करती है। यह व्यक्ति के लिए भविष्य के मौके खोल और बंद कर सकती है। ... इसे ऐसे लिया गया है जैसे यह उच्च प्रतिष्ठा और करियर के मौके आबंटित करने का सबसे निष्पक्ष साधन है। जबकि यह प्रक्रिया निष्पक्ष न होकर किसी खास घर के वातावरण से आए विद्यार्थियों के पक्ष में अपना मत देती है। परीक्षा, पचास एवं साठ के दशक के शिक्षा समाजशास्त्रियों की एक बड़ी खोज मानी जाती है (वही)।

बाउल्स एवं जिन्टिस का मानना है कि वस्तुनिष्ठ दिखने वाली परीक्षा वस्तुत: एकाधिकारवाद, ऊँच-नीच के आधार पर पदानुक्रमित, स्तरीकृत तथा असमान आर्थिक व्यवस्था को पुनर्बलित करने का काम करती है। साथ ही साथ वह व्यक्ति को उसकी मिली हुई जगह पर ही संतुष्ट करने का काम कुछ इस प्रकार से करती है ताकि वह उसे सहज ही लगने लगे (वही)। उनका कहना है कि आकलन को केवल यांत्रिक तंत्र के रूप में ही नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि उसे उस महत्वपूर्ण सामाजिक प्रक्रिया के एक अंग के रूप में देखा जाना चाहिए जोकि विद्यार्थियों को बाह्य निर्णय, बाह्य पुरस्कार तथा बाह्य नियंत्रण को स्वीकार करने के लिए तैयार करती है। बोद्र्यू भी यह ज़ोर देकर कहते हैं कि प्रत्यक्ष तौर पर वस्तुनिष्ठ संज्ञानात्मक दिखने वाली आकलन प्रक्रिया सांस्कृतिक पूर्वाग्रहपूर्ण होती है। बोद्र्यू एवं पैसरॉन (1976) ने यह विश्लेषणपूर्वक दिखलाया है कि आकलन के पारंपरिक तौर-तरीके जैसे कि लेख, साक्षात्कार एवं मौखिक परीक्षा (फ्रांस में जो व्यापक तौर पर प्रयुक्त होते हैं) किस प्रकार फ्रांस के अभिजात्य साहित्यिक एवं भाषाविज्ञान की परंपरा में धंसे हुए हैं (वही)।

कनफ्लीक्ट सिद्धान्त का मानना है कि आकलन का तंत्र समानता की जगह असमानता को पुनर्रुत्पादित करने वाला है। आकलन की विषयवस्तु तथा रूपरेखा दोनों ही वर्चस्वशाली सामाजिक समूह की सामाजिक एवं सांस्कृतिक परंपरा के प्रति पूर्वग्रसित है। वस्तुनिष्ठता के वेश में छिपकर आकलन इसके पूर्वाग्रह को वैधता देने के जरिए वस्तुत: नियंत्रण की कुञ्जी का काम करता है (वही)।

ब्रॉडफूट (1979) का तर्क है कि स्कूल एवं समाज के बीच सेतु के रूप में आकलन शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक आयाम है। राजनीतिक से यहाँ मायने

है सामाजिक ताकत एवं सामाजिक नियंत्रण की ताकत। विषयवस्तु तथा उसकी रूपरेखा दोनों ही के लिहाज से आकलन को सावधानी से इस प्रकार तैयार किया जाता है जिससे कि समाज को उसके वर्तमान रूप में ही आगे बढ़ाते रहा जाए।

लेखक का कहना है कि अनेक शोधों के जरिए यह स्थापित हो चुका है कि आकलन, विषयवस्तु तथा तकनीक दोनों के ही लिहाज से व्यक्तिनिष्ठ होते हैं और अपने क्रियात्मक रूप में पूर्वाग्रह युक्त होते हैं। लेखक का तर्क है कि जाँच करने की स्थिति जाँचकर्ता और जिसकी जांच की जानी है उसके बीच एक अंत:क्रियात्मक स्थिति है। इसलिए इसे तटस्थ प्रक्रिया के रूप में नहीं देखा जा सकता है बल्कि यह भी उसी तरह के विश्लेषण की दरकार रखती है जैसी कि सामाजिक अंत:क्रिया। लेखक ऐरिक्सन की उस बात की ओर ध्यान दिलाते हैं जिसमें उनका कहना है कि सभी अनुभव सापेक्षिक हैं और इस प्रकार सभी विश्लेषण-प्रश्नों के, सांगोपांग उत्तरों के सापेक्षिक होना चाहिए। अगर तीस बच्चों की कक्षा में जब कोई 'मानकीकृत' जाँच की जाती है तो वे तीस वैयक्तिक उत्तर देते हैं। ये उत्तर उसी अंश में समान होंगे जिस अंश में ली गई जाँच, विद्यार्थियों के परस्पर साझा अनुभवों से जुड़ती है। जाँच का अनुप्रयोग व्यक्ति के सम्पूर्ण जगत के विभिन्न प्रभावों पर टिका होता है उदाहरण के लिए घर की पृष्ठभूमि, पहले के स्कूल अनुभव, जाँचकर्ता के प्रति रवैया। लेखक रोथ (1974) के कथन को रखते हैं जिसमें इनका कहना है कि जाँचकर्ता का नृजातीय समूह विद्यार्थियों के उत्तरों को भलीभांति प्रभावित करता है। वे तो यहाँ तक कहते हैं कि अगर जाँच मशीन के जरिए भी की जाए तब भी स्थिति सामाजिक ही बनी रहती है।

गुडमैन येता एम एवं गुडमैन केनीथ एस. (1990) चिन्हित करते हैं कि कम उपलब्धि पाने वालों में गैर-आनुपातिक संख्या अल्पसंख्यकों, गरीबों तथा उनकी होती है जो गैर-परम्परावादी होते हैं। इसका निहितार्थ यह है कि शिक्षा तंत्र इन अधिगमकर्ताओं को अपनाने में असफल रहा है। लेखक की स्थापना है कि पारंपरिक रूप से नियंत्रित कार्यक्रम में विद्यार्थी उतनी दूर तक सफलता हासिल कर पाते हैं जितनी दूर तक उसमें 'नॉन-फैसिलिटेटिव' पाठ्यचर्या तथा अध्यापन को स्वीकार करने तथा उससे राजी होने की इच्छा तथा काबिलियत होती है। वाइगोस्ट्स्की के हवाले से वे इस स्थापना को पेश करते हैं कि सभी इन्सान भाषा सीखने तथा भाषा के जरिए सीखने की काबिलियत रखते हैं। स्कूल के बाहर सीखना जिस प्रकार से प्रमाणिक होता है अगर उसी तरह से स्कूल के अन्दर भी सीखना प्रमाणिक हो तब कोई वंचित समूह नहीं रह जाएगा। वे कहते हैं कि

सभी समूह इतना प्रेरित तथा सांस्कृतिक रूप में इस तरह सज्जित नहीं होते हैं कि वे शिथिल/मृत अध्यापन तथा पाठ्यचर्या में बने रहें।

कक्षा में अनौपचारिक तौर पर एक साक्षरता क्लब पाया जाता है। स्कूल कुछ विद्यार्थियों को तो अपनाता है पर दूसरे के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा भाषिक देय को इस क्लब की सदस्यता के तौर पर स्वीकार नहीं करता है और इस प्रकार उन्हें बहिष्कृत कर देता है। यहाँ से सफल एवं असफल विद्यार्थियों की कहानी शुरू हो जाती है। जिन्हें इस साक्षरता क्लब (अनौपचारिक) की सदस्यता मिल जाती है वे मृत अध्यापन पाठ्यचर्या के अनुभवों को कमोवेश स्वीकारने लगते हैं और जिन्हें इसकी सदस्यता नहीं मिल पाती और उनकी असहजता शुरू हो जाती है। इस तरह धीरे-धीरे उन पर अयोग्य होने, सीखने के लिए गैर-उत्सुक होने, बदतमीज होने इत्यादि का इल्जाम चस्पा होने लगता है। इस प्रकार लेखक ने यहाँ विद्यार्थियों की असफलता को स्कूल की असफलता के रूप में देखा है। वह मानते हैं कि चूँकि स्कूल के संपूर्ण वातावरण में खास भाषिक, समाजो-सांस्कृतिक परिवेश की मान्यता होती है इसलिए जो विद्यार्थी इनसे मेल नहीं खा पाते वे असफलता की ओर बढ़ने के लिए मजबूर होते हैं।

कुछ लोग न तो परीक्षा को एक सिरे से नकारते हैं और न ही एक सिरे से उसे स्वीकार करने की स्थिति में अपने को पाते हैं। इन्हें मोटे तौर पर 'सुधार उदारवादी', 'संशोधनवादी' संज्ञाओं के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इन्हें उन विचारों के समर्थक कहा जा सकता है जो परीक्षा का उन्मूलन तो नहीं चाहते पर उसमें मौजूद खराबियों की पहचान करके उसे एक हद तक दूर करने का उपाय सुझाते हैं। उपरोक्त वर्ग के विचारक परीक्षा के अतिशय प्रयोग और पाठ्यचर्या तथा शिक्षण पर परीक्षा द्वारा रचे जाने वाले दबावों को अनुचित मानते हैं। उनका मत है कि परीक्षा का यह काम नहीं होना चाहिए कि वह प्रमाणपत्र के लिए विभिन्न रोजगारों में युवाजनों को उनका स्थान आवंटित करे जैसा कि यह वर्तमान में कर रही है। इनका मानना है कि परीक्षा में कुछ डिग्री तक का सामाजिक पूर्वाग्रह दुर्निवार है। समाज के भीतर सम्पत्ति, वर्ग, खास धार्मिक विश्वास अथवा सिद्धान्तों के आधार पर पहचाने जाने वाले समूह मौजूद होते हैं। यह समूह किसी भी आकलन तथा चयन प्रक्रिया में लाभ पाते हैं और कुछ इस लाभ से वंचित कर दिए जाते हैं। इनका मानना है कि यदि हमारा समाज सांस्कृतिक रूप से एकरूपी समाज होता तो संभवत: पूर्वाग्रह को दूर किया जा सकता था। इनका कहना है कि परीक्षा का सरोकार चाहे क्षमता की पहचान हो या सामाजिक न्याय, उसे तो वस्तुत:

एक ऐसे सटीक एवं न्यायपूर्ण तंत्र की खोज थी जिससे कि वह सामाजिक आधार ;जैसा कि पहले होता था, के बजाय शुद्ध शैक्षणिक आधार पर विद्यार्थियों के बीच मौजूद प्रतिभा को पहचान सके और उसे अन्य से विलगाकर देख सके। इस विचारधारात्मक एवं प्रयोजनीय दबावों से 'प्रतिभाशाही' अवधारणा का जन्म हुआ।

इस दायरे में आने वालों का तर्क है कि जनशिक्षा के युग से पहले के समय में जिस प्रकार से व्यावसायिक भूमिकाओं का आवंटन किया जाता था उसके मुकाबले आकलन का तंत्र ज्यादा खुला और विवेकसम्मत है। यह वर्ग हालांकि साथ में यह मानता है कि इस खुलेपन के बावजूद इसमें वर्ग विभेदीकरण निरंतर एवं उल्लेखनीय रूप से मौजूद है।

एक परिपूर्ण दुनिया में, जहाँ व्यक्ति स्वप्रेरित था जहाँ कोई प्रतियोगिता नहीं थी, और जहाँ हमेशा यह सोचा जा सकता था कि जो कुछ भी पढ़ाया गया वह सीख लिया गया हो वहाँ संभवत: परीक्षा एक अनावश्यक चीज हो। जन परीक्षा के मुख्य कार्य हैं, माध्यमिक स्तर की स्कूली पाठ्यचर्या के बहुत बड़े भाग को निर्धारित करना, उपलब्धि के विभिन्न स्तरों पर विद्यार्थियों को बांटना और इसके लिए उन्हें प्रेरित करना। शैक्षणिक संस्थाओं में तथा काम की जगहों पर विद्यार्थियों का चयन करने में इसका प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार परीक्षा समाज में व्यक्तियों की स्थिति को प्रभावित करती है। यह सामाजिक अभियंत्रिकी तथा पाठ्यचर्या का प्रमुख एजेन्ट है।

इनका एक तर्क यह भी है कि परीक्षा की उपयोगिता निदानात्मक सन्दर्भ में भी की जा सकती है। वह इस तरह से कि जो विज्ञान और गणित में अच्छा कर रहे हैं उन्हें विज्ञान और गणित की पढ़ाई जारी रखने में बढ़ावा दिया जाए। परीक्षा को इस तरह इस्तेमाल करने की जड़ें वस्तुत: नृशंस प्रतियोगिता के दर्शन में धंसी हुई हैं। दरअसल परीक्षा अभी भी चयन का साधन ही बनी हुई है जिसके जरिए कुछ के लिए तो सफलता के दरवाजे जरूर खुलते हैं पर अन्य के लिए बन्द हो जाते हैं। परीक्षा के संबंध में गैर–आलोचनात्मक मत रखने वाले यह कहते हैं कि परीक्षा में आवेदकों के बारे में कुछ भविष्य कथन की संभावना है। पर इसमें यह छिप जाता है कि परीक्षा नौकरी–पेशा एवं अन्य क्षेत्रों में वांछित संख्या से ज्यादा आए आवेदकों को छांटने का काम करती है। परीक्षा में निहित भविष्य कथन की संभावना के आधार पर इसकी वैधता स्थापित करने वालों की आलोचना भी मिलती है। इन आलोचकों का कहना है कि परीक्षा वस्तुत: कम खर्च पर चयन एवं छटनी की सुविधा प्रदान करती है। इसलिए परीक्षा की वैधता

को बनाए रखने के पीछे अर्थशास्त्रीय हित, अरुचि एवं आलस्य का तत्व काम कर रहा है न कि कोई शैक्षणिक हित। इन आलोचकों का कहना है कि परीक्षा का उद्देश्य परीक्षार्थी में निहित संभावना का कथन नहीं बल्कि सीमित प्रवेश देना है ताकि केवल प्रस्तावित संख्या में विद्यार्थी 'उत्तीर्ण' हों। क्योंकि परीक्षा अनुत्तीर्ण हुए विद्यार्थियों की क्षमताओं और संभावनाओं के बारे में कुछ नहीं कहती।

ब्रॉडफूट (1979) का मानना है कि मूल्यांकन सुधार को लेकर अधिकांश तर्क 'नरम' किस्म के हैं। वि-स्कूलीकरण वाले, प्रगतिशील तथा उदारवादी इस बात की वकालत करते हैं कि परीक्षा के जरिए पैदा किए जाने वाले दबाव तथा परीक्षा में असफल होने के कारण विद्यार्थियों पर जो इसका अलगाववादी प्रभाव पड़ता है उसे खत्म किया जाना चाहिए। उपरोक्त धाराओं का विश्वास है कि औपचारिक जाँच को खत्म करके, निदानात्मक आकलन, आकलन की विषयवस्तु का विस्तार और व्यक्तिगत, सामाजिक तथा अकादमिक सभी तरह की उपलब्धियों को शामिल करके विद्यार्थियों में अभिप्सा, प्रेरणा, विश्वास तथा संलग्नता को बढ़ाया जा सकता है। उपरोक्त तरह का परिवर्तन अधिगम प्रक्रिया को कम डराने वाली बनाएगा, उसे अधिक व्यक्तिगत तथा विद्यार्थियों को ज्यादा उत्पादक बनाने में सहयोगी होगा। पर लेखक इसे सामाजिक एवं राजनैतिक तौर पर आमूल परिवर्तनगामी नहीं मानता। वह इस संबंध में बर्न्सटीन के तर्क को पेश करता है जिसमें यह कहा गया है कि इस तरह के सुधार पहले तो व्यक्ति-व्यक्ति में विभेदीकरण के जरिए बदलते हुए सामाजिक वर्ग की संरचना के लिए नए रास्ते मुहैया करवाते हैं और दूसरा यह कि इस तरह के सुधार स्कूलिंग की कटुता पर मृदुता की परत चढ़ाने का काम करते हैं खासकर चयन के संदर्भ में। इस तरह वे सामाजिक नियंत्रण को कायम करने का उच्च औज़ार है। रॉबिन (1977) के उदाहरण के सहारे लेखक मानता है कि एक स्तर पर इस तरह के परिवर्तन का स्वागत किया जा सकता है क्योंकि ये शिक्षण उद्देश्य के सम्पूर्ण फलक को पुनर्बलित करते हैं (वही)।

पर दूसरी तरफ लेखक यह भी सावधान करता है कि इस तरह के नरम परिवर्तनों से किसी प्रभावशाली परिणाम की उम्मीद नहीं की जा सकती। इसके लिए वह यूनाइटेड स्टेट का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि यहाँ के स्कूल चयन एवं औपचारिक आकलन के वर्चस्व की कम से कम गिरफ्त में है। फिर भी वे निरक्षरों की कमी, पढ़ाई बीच में छोड़ने वाले तथा स्कूल से नागा रहने वाले विद्यार्थियों की संख्या के लिहाज़ से बहुत अलग नहीं हैं। और न ही सामाजिक तथा नृजातीय समूहों के बीच पाए जाने वाली

विभेदकारी उपलब्धियों के लिहाज से खास हैं। लेखक का मानना है कि आकलन में 'सख्त' परिवर्तन वे हैं जो आकलन की प्रक्रिया को सामाजिक परिवर्तन में संभावनाशील भूमिका अदा करने की इज़ाजत देते हैं।

परीक्षा नामक परिघटना का समाजो-आर्थिक संदर्भ एवं उसमें निहित हित

19वीं सदी के शुरू होने के तुरन्त बाद परीक्षा की अनिवार्य एवं जड़ तस्वीर बदलनी शुरू हो चुकी थी। 'इवेन्जेलीकल पुनरुत्थानवाद' से गठजोड़ कर चुके 'राजनैतिक मूलभूत परिवर्तनवादी' एवं उस समय उभर पा रहे 'बेन्थामाइट' (Benthamite) को इस परिवर्तन का श्रेय दिया जा सकता है। इसकी अभिव्यक्ति सामाजिक व्यवस्था में न्याय के लिए राजनैतिक एवं नैतिक सरोकार रखने वाले परोपकारवादियों (Philanthnophist) में देखी जा सकती है। नए औद्योगिक शहरों (जॉनसन, 1976; बर्नार्ड, 1961; ब्रॉडफूट, 1979, पृ. 29-30) की खासियत बन चुकी कानूनहीनता तथा बढ़ रही इन्द्रियानुलिप्तता की प्रवृत्ति पर लगाम लगाने की कोशिश हो रही थी। ये दोनों व्याख्याएँ शैक्षिक प्रावधानों में तेजी से बढ़ रहे औद्योगिक-पूँजीवादी अर्थतंत्र की नई माँगों की जाँच करती हैं। ये माँग बहुत जल्द ही उस उपकरण में झलकने लग गई जिसका विकास आकलन की प्रविधि को विकसित करने में किया गया था। इस उपकरण के जरिए स्कूल ने अर्थव्यवस्था की जरूरतों के मुताबिक अपने आपको जवाबदेह बनाया। जिन्होंने विक्टोरियन युग में औद्योगिक क्रांति तथा आर्थिक विस्तार का नेतृत्व किया था वे उपयोगितावादी, प्रयोजनवादी तथा अनिवार्य तौर पर एक विवेकी व्यक्ति थे जिन्होंने विज्ञान तथा वैयक्तिक जिम्मेवारी पर अपना विश्वास जतलाया। इस प्रकार पेशेवर अपने संगठन को विवेकीकृत करने तथा क्षमता के विशिष्ट स्तर को परिभाषित किए जाने की आवश्यकता महसूस करने लग गए। वे इस परिभाषित विशिष्ट स्तर की क्षमता को दिखाने वाले किसी प्रमाण पत्र की जरूरत भी महसूस करने लगे। इस प्रकार एपोथेकारिज समाज द्वारा सन् 1815 में पहली पेशेवर परीक्षा स्थापित हुई ताकि यह पक्का किया जा सके कि चिकित्सक पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित हैं। इस तरह पहले परीक्षा का संस्थानीकरण हुआ।

ये परीक्षाएँ उच्च हैसियत वाले पेशों के साथ जुड़ी हुई थीं। लिखित एवं सैद्धांतिक टेस्ट का मॉडल प्रयुक्त किया गया। वस्तुत: विक्टोरियन युग के कई लोग परीक्षा में कई तरह की सफलताएँ देखते थे - जैसे कि यह केवल ज्ञान का ही प्रमाणपत्र नहीं है बल्कि मध्यक्रम के व्यवसाय के लिए जरूरी गुणवत्ता का भी प्रमाणपत्र है।

19वीं सदी के पूर्वार्द्ध के इंग्लैण्ड में फैलता हुआ अर्थतंत्र केवल नई तकनीकों की खोज तथा नए बाजारों के सृजन पर निर्भर नहीं था बल्कि उसे इस तरह के कामगारों की जरूरत थी जोकि पैसों की खातिर अपना श्रम बेचने के लिए तैयार हों। उत्पादन की एक आर्थिक इकाई के रूप में परिवार का पतन हो रहा था और साथ-साथ व्यक्तिवादिता का उदय हो रहा था। इसके साथ ही नए अर्थतंत्र में उस नए वर्ग की आवश्यकता भी पनप रही थी जो वैज्ञानिक रूप से शिक्षित मैनेजर हों। इस तरह उन स्कूलों की प्रतीक्षा की जाने लगी जो वांछित ज्ञान तथा कौशल वाले व्यक्तियों को पैदा करे। इस समय पब्लिक स्कूलों में तुरंत बढ़त आई, खासकर 1840 में यूरोप के Marlbough, Veillingtan & Rugby जगहों में इसके उदाहरण देखे जा सकते हैं। यह परिघटना दो तरह के प्रभावों का परिणाम थी। पहला प्रभाव उस पुरानी परंपरा की वज़ह से पड़ा जिसमें अपेक्षाकृत ज्यादा सफल बुर्जुवा वर्ग अपने लड़कों के लिए भद्रपुरुष बनाने का प्रशिक्षण लेना चाहता था।

शिक्षा नामक पूँजी पर इधर जो नया जोर दिया जा रहा था दूसरा प्रभाव उस ओर से आया। अभिजात्य वर्ग के निर्धन और कम पैसे वाले सदस्य यह महसूस करने लगे कि उनकी संतानों को शैक्षिक प्रमाण पत्र हासिल करके इसके जरिए राजनीतिक तथा आर्थिक हैसियत को बरकरार रखना चाहिए। इस प्रकार पेशेगत ऊँचाई में प्रवेश के लिए शैक्षिक प्रमाणपत्र पर तेजी से जोर बढ़ा। इस क्रम में विभिन्न पेशों में प्रवेश पाने के दबाव ने चयन को अनिवार्य बना दिया। इस परिस्थिति ने स्कूलों को एक नई भूमिका दी। भूमिका यह कि स्कूल लगातार बढ़ते हुए क्रम में विभिन्न प्रकार की व्यावसायिक भूमिकाओं के लिए प्रतियोगियों को न सिर्फ तैयार करें बल्कि उनके बीच प्रतिद्वन्द्विता का फैसला भी लें। इसका नतीजा यह निकला कि सभी स्तरों पर स्कूलों – प्रारम्भिक, ग्रामर तथा पब्लिक – ने प्रतियोगिता पर बढ़ते हुए क्रम में जोर देना शुरू कर दिया। सामाजिक हैसियत को हासिल करने के रास्ते के रूप में अब शिक्षा का महत्व बढ़ गया। इसने विश्वविद्यालयों को यह अहसास करवाया कि नई प्रतियोगिता को नियमित करने के लिए कुछ मशीनें चाहिए।

इसके परिणामस्वरूप ऑक्सपफोर्ड एवं कैम्ब्रिज, रॉयल कमीशन ने क्रमशः 1850, 1857 एवं 1858 में स्कूल परीक्षा बोर्ड गठित किया ताकि बढ़ते हुए माध्यमिक स्कूलों और समाज के नए औद्योगिक एवं पेशेवर खण्ड को आपस में जोड़ा जा सके। इसी समय लंदन तथा दुर्हम (Durham) के विश्वविद्यालयों द्वारा प्रवेश परीक्षाओं की स्थापना करना, इसी प्रवृत्ति का एक हिस्सा था।

प्रतिभा एवं उपलब्धि के सन्दर्भ में व्याप्त इस समय की प्रवृत्ति के और भी महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। प्राचीन चीन के नमूने के बाद सन् 1855 में गृह तथा भारतीय सर्विस में प्रवेश के लिए परीक्षा का गठन ऐसा ही एक उदाहरण है। पास करने वाली परीक्षाओं के रूप में ये परीक्षाएँ केवल महत्वपूर्ण नहीं थी बल्कि चयन पर विशेष बल डालने की वजह से महत्वपूर्ण थीं। प्रतियोगिताओं के जरिए उत्पादन का स्तर बढ़ाना चाहिए, परीक्षा ने इस पूँजीवादी विश्वास को शिक्षा के दर्शन में उतारने का काम किया गया।

1922 तक हायर स्कूल प्रमाणपत्र के रूप में प्रतियोगिता की विवेकसम्मत व्यवस्था, यानी नार्म रिपफरेन्स्ड स्कूल परीक्षा दृढ़ता से स्थापित हो चुकी थी।

प्रतिभा को आंकने का कोई वस्तुनिष्ठ तरीका ढूँढ़ा जा रहा था। शिक्षा में बढ़ रहे वैयक्तिकता के जोर में जिसका समाधान मिला। वस्तुत: स्वयं प्रतिभाशाही के अन्दर ही वैयक्तिकता की धारा बह रही थी। वैयक्तिक उपलबिध में बढ़ती हुई रुचि ने 19वीं सदी के मनोवैज्ञानिकों को विभिन्न विशेषताओं के निर्धारक तत्वों के अध्ययन की ओर प्रेरित किया। Galton तथा Sparkman जैसे विद्वानों के कामों ने मनोवैज्ञानिकों के बीच इस प्रतिबद्धता को विकसित किया कि वैयक्तिक विद्वता की उपलब्धि की निर्धारक तत्व 'आन्तरिक क्षमता' या 'बुद्धिमता' होती है। यह गुण तयशुदा तथा मापनीय है।

बीसवीं सदी के आरंभ में फ्रांस के 'मंद अधिगमकर्ता' पर किया गया अध्ययन, इंग्लैण्ड के Burt (1912) का, 'द इनहेरिटेंस ऑफ मेन्टल केरेक्टरिस्टिक' नामक लेख और सन् 1918 में संयुक्त राष्ट्र की सेना में बड़े पैमाने पर प्रभावकारी तरीके से लिए जाने वाले टेस्ट ने अकादमिकों तथा जनसाधारण को तेजी से सहमत किया कि 'बौद्धिक क्षमताओं' का न केवल वस्तुनिष्ठ मापन किया जाना संभव है बल्कि इसके आधार पर भविष्य के अकादमिक तथा व्यावसायिक निष्पादनों की भविष्यवाणी भी संभव है।

इस तरह कहा जा सकता है कि बुद्धि परीक्षा 20वीं सदी के मध्य तक शिक्षा में एक वर्चस्वशाली चिंतन बन गई। Burt (1933) लिखते हैं कि मनोवैज्ञानिक, बुद्धि को जन्मजात तथा चौतरफा बौद्धिक क्षमता के रूप में समझते हैं। उनका मानना है कि यह अर्न्तनिहित है या फिर कम से कम आन्तरिक और यह पढ़ाने अथवा प्रशिक्षण की वज़ह से नहीं है। आगे उनका भी यह मानना है कि यह बौद्धिक है, भावनात्मक एवं नैतिक नहीं। यह उद्यम अथवा उत्साह से अप्रभावित रहती है। यह सामान्य है, विशिष्ट

नहीं है। यानी यह किसी खास तरह के काम तक सीमित नहीं है बल्कि हम जो कुछ भी करते हैं, कहते हैं या सोचते हैं उन सभी में यह शामिल है। हमारे मस्तिष्क की सभी विशेषताओं में यह बहुत दूर तक पहुँचने वाली है। इस तरह के विचारकों का मानना है कि सौभाग्य से बुद्धि को सटीकता एवं आसानी से मापा जा सकता है (ब्रॉडफूट, 1979)।

सरल समाजों में शिक्षा 'प्राथमिक सामाजीकरण' की भूमिका अदा करती है जिसके तहत वह बच्चों को व्यवहार का स्वरूप तथा उन कौशलों का प्रशिक्षण देती है जिसकी जरूरत समाज के सभी सदस्यों को होती है। पर जटिल समाजों में द्वितीयक सामाजीकरण का काम होता है क्योंकि इन समाजों में श्रम विभाजन के कई स्तर होते हैं। इनके लिए अलग-अलग क्षमताओं और कौशलों की आपूर्ति चाहिए। इस संदर्भ में शैक्षिक संस्था, भविष्य की विभिन्न भूमिकाओं के लिए किशोरों एवं युवाओं को तैयार करती है। जटिल समाजों में विशिष्ट एवं वांछित कौशलों की शिक्षा उच्च रूप से नौकरशाही युक्त तथा महंगे तंत्र के द्वारा दी जाती है। स्वाभाविक है कि इसमें किसी मूल्यांकन प्रणाली की आवश्यकता होगी। इसलिए इन समाजों में अनिवार्य रूप से 'पास करने वाले' टेस्ट हुआ करते हैं। इसमें युवतर लोग इसलिए भाग लेते हैं कि वे अपनी महारत की मानकता का प्रदर्शन कर सकें। इसमें अपेक्षा यह होती है कि इस प्रदर्शन के आधार पर समाज के वरिष्ठ सदस्य इन युवतर जनों के समाज में फिट होने की योग्यता की परख करें और उन्हें मान्यता दें। सरल समाजों में बनिस्पत 'शिक्षा' की वांछित विषयवस्तु को लेकर चर्चा नहीं होती है और उसके सदस्यों में इस बात के आधार पर परस्पर विभेद भी नहीं किया जाता कि किसको किसमें कितनी महारत हासित है (वही)।

फेल होने वाले विद्यार्थियों की बुनियादी पहचान के प्रति उदासीनता

कुमार, कृष्ण (20 मार्च, 2005) यह स्थापित करते हैं कि देश की महत्वपूर्ण जनतांत्रिक प्रक्रिया 'चुनाव' में देश के ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों के शैक्षिक हितों की बलि ली जाती है। सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों ने भारत के लोकतंत्र की सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया, यानी चुनाव को सुचारू रूप से चालू रखने में जो योगदान दिया है, वह लोकदृष्टि से ओझल रहा है। उनका इशारा चुनाव प्रक्रिया में लगने वाले सरकारी स्कूल के शिक्षकों से है जिनके इस प्रक्रिया में लगे होने के कारण विद्यार्थी स्कूली पढ़ाई से वंचित हो जाते हैं। चूँकि ग्रामीण सरकारी स्कूलों के शिक्षकों की संख्या ज्यादा है और दूसरी बात यह कि ग्रामीण बच्चे पढ़ाई के लिए मूलत: इन्हीं शिक्षकों पर निर्भर रहते हैं

इसलिए इन शिक्षकों की अनुपस्थिति का मतलब है ग्रामीण बच्चों की पढ़ाई उतने दिनों तक ठप्प हो जाना।

लेखक इसका विस्तार करते हुए उस विडम्बना की ओर ध्यान दिलाते हैं कि जबर्दस्ती के लिए गए इस बलिदान के बावजूद देश इन ग्रामीण विद्यार्थियों के प्रति उदासीनता से भरा हुआ है। ये ही विद्यार्थी स्कूलों में बुनियादी सुविधाओं की कमी, स्वीकृत शिक्षक विद्यार्थी अनुपात से बहुत बड़ी विद्यार्थियों की संख्या, शिक्षकों की अनुपस्थिति जैसी विपरीत स्थितियों में पढ़ते हुए भारी संख्या में फेल होने के लिए अभिशप्त हैं। पर आज देश के पास यह मोटा-सा आंकड़ा उपलब्ध नहीं है कि बोर्ड परीक्षा (10वीं एवं 12वीं) में ग्रामीण स्कूलों का पास प्रतिशत शहरी इलाकों के मुकाबले कितना कम रहा। उनका कहना है कि देश संभवत: उस लोकतांत्रिक सरोकार से भी अनजान है कि देश में फेल होने वाले विद्यार्थियों के बारे यह जाना जाए कि वे कौन हैं, कहाँ रहते हैं, किन परिस्थितियों में रहते हैं, कैसे पढ़ते हैं और फेल क्यों हुए। अपने तर्क के संबंध में वे दृष्टान्त देते हैं कि झारखण्ड, बिहार और हरियाणा के चुनाव ऐसे समय में हुए जब इम्तिहान नजदीक थे। एक अन्य लेख (11 जून 2000), में लेखक यह बतलाते हैं कि शिक्षा का विषमतापोषी चेहरा छिपाए रखने के लिए जरूरी है कि ऐसा वर्गीकरण न किया जाए। एक सर्वेक्षण के हवाले से लेखक ग्रामीण पास-फेल की विभीषिका की ओर ध्यान खींचते हैं। सर्वेक्षण बतलाता है कि ग्रामीण भारत में पहले दर्जे में दाखिला लेने वाली सौ लड़कियों में से कुल एक लड़की बारहवें दर्जे तक पहुँचती है।

मालवीय (1997) ने मध्य प्रदेश, बैतूल जिला, शाहपुर तहसील में पड़ने वाले एक आदिवासी गाँव 'पावर झण्डा' के 52 सालों के परीक्षा परिणामों के अध्ययन के बाद पाया कि यहाँ कक्षा 5, 8 और 12 की परीक्षा उत्तीर्ण करने वालों का प्रतिशत क्रमश: 17, 3.2 तथा 1.1 है। किसी नगर महानगर के ऐसे परीक्षा परिणाम की शायद ही कल्पना की जा सकती हो। इसी तरह उपरोक्त संदर्भ में राष्ट्रीय स्तर के परीक्षा परिणामों का परिदृश्य क्या रहा है इसे समझने के लिए नीचे दसवीं बोर्ड परीक्षा के गैर अनुसूचित जाति एवं जनजाति, अनुसूचित जाति तथा जनजाति के परीक्षा परिणामों का लगभग तीन दशकों का सफरनामा तालिका के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है।

वर्ष	गैर अनुसूचित जाति एवं जनजाति	अनुसूचित जाति	अनुसूचित जनजाति
1977	44.42		
1978	46.62		
1979	47.16	30.32	29.90
1980	50.65	38.64	32.80
1981	48.95	34.09	33.74
1982	50.31	36.19	40.07
1983	48.12	33.85	40.61
1984	48.12	32.75	46.83
1987	47.16	32.25	34.15
1988	46.09	32.55	35.36
1989	47.69	28.22	32.20
1990	49.42	34.02	29.31
1991	54.53	43.24	36.32
1992	46.75	25.94	27.35
1993	51.77	32.86	20.34
1994	51.04	32.55	28.12
1995	52.96	38.37	30.13
1996	47.37	35.85	28.13
1997	50.18	35.23	29.98
1998	46.70	32.11	37.65
1999	51.26	40.84	40.54
2000	49.17	33.87	39.93
2005	68.07	56.38	49.31
2006	72.59	61.95	54.88
2007	73.70	63.99	56.10
2008	71.68	59.41	59.36
2009	76.29	65.64	64.86
2010	79.38	70.64	64.47

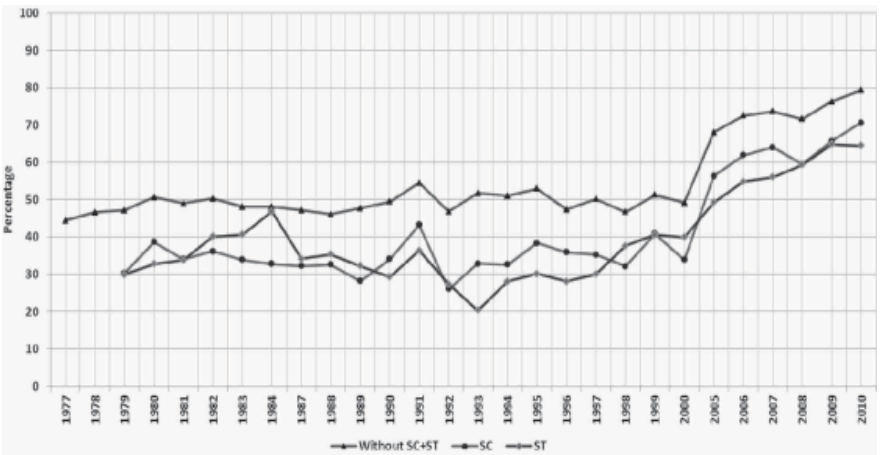

तालिका से यह उभरता है कि राष्ट्र की जो शिक्षा नीति (1992) सभी को सफलता के पर्याप्त अवसर देने की प्रतिबद्धता दोहराती है उसी की परीक्षा व्यवस्था में सन् 1979 से 2010 के बीच कुल 26 वर्षों में दसवीं बोर्ड परीक्षा में गैर अनुसूचि जाति एवं जनजाति के विद्यार्थियों का औसत पास प्रतिशत जहाँ 54.89 रहा वहीं अनुसूचित जाति एवं जनजाति का औसत पास प्रतिशत क्रमश: 40.84 एवं 39.48 रहा है। यानि अनुसूचित जनजाति एवं जनजाति के विद्यार्थी गैर अनुसूचित जाति एवं जनजाति की अपेक्षा लगभग 15% अधिक फेल होते जा रहे हैं। आधार वर्ष 1979 में यह फासला अनुसूचित जाति का 16. 84% और अनुसूचित जाति का 17.26% था। 2010 में आकर औसतन लगभग 15% अधिक फेल होने की दर यह दर्शाती हैं। सभी के लिए सफलता के समान अवसर उपलब्ध कराने की तमाम प्रतिबद्धता के बावजूद गैर-अनुसूचित जाति की बनिस्पत अनुसूचित जाति एवं जनजाति के विद्यार्थियों के फेल होने का फासला एक दो प्रतिशत की कमी के साथ लगभग वहीं बना हुआ है जो कि आधार वर्ष 1979 में था। ध्यातव्य है कि इस बीच आधार वर्ष से लेकर 2010 तक का समय 32 वर्षों का रहा है। यानि उपलब्ध 26 वर्षों के आँकड़ों के अनुसार हम अपनी नीतिगत प्रतिबद्धता के बावजूद कुछ आगे नहीं बढ़ पाए हैं। इसे हमारी प्रतिबद्धता, आयोजना एवं क्रियान्वयन तीनों की ज़मीनी हकीकत को दर्शाने का पर्याप्त प्रमाण माना जा सकता है।

सद्गोपाल (2017) भारत में आजमाए गए परीक्षा के दोनों ही प्रारूप – वर्षान्त परीक्षा और सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन – के सामाजिक चरित्र की पड़ताल करते हुए इसे दलित वंचित के संदर्भ में विभेदकारी ओर दोयम दर्जे की शिक्षा की ओर ढकेलने वाला पाते हैं।

अब सवाल यह है कि उपरोक्त स्थिति के बावजूद हम परीक्षा के साथ आरामदेह स्थिति में क्यों हैं?

इसका एक उत्तर यह हो सकता है कि परीक्षा सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से स्वीकृत वैध विषमतापोषी शैक्षिक तंत्र है, इसका हमें संज्ञान है ही नहीं। या फिर संज्ञान है पर हम इस विषमतापोषी शैक्षिक तंत्र को इसलिए बनाए रखना चाहते हैं क्योंकि हमारा विश्वास समतामूलक समाज में है ही नहीं। कुमार (2016) का तर्क यूँ है कि कि हमने सामाजिक विषमताएँ पचा रखी हैं इसलिए पास-फेल वाली व्यवस्था से हमें कोई तकलीफ नहीं है। यह इस तरह से कि परीक्षा, समाजो-आर्थिक धरातल पर तीव्र रूप से विभाजित असमानता को ढाँपने का भान देती है। और यह काम वह प्रश्न-पत्र तथा मूल्यांकन में गोपनीयता बरत कर वस्तुनिष्ठता का भान देते हुए करती है।

इतना सब घटित होते रहने के बावजूद हम परीक्षा के साथ आरामदेह स्थिति में क्यों है इसकी एक अन्य व्याख्या में हैडॉक (1999) का कहना है कि चूँकि परीक्षा की शैक्षिक प्रकृति गैर आलोचनात्मक, एकतरफा सोच को बढ़ावा देने वाली है इसलिए भी हम परीक्षा के साथ आरामदेह स्थिति में हैं क्योंकि हम प्रश्न उठाऊँ, वैज्ञानिक एवं आलोचनात्मक समाज बनाने की इच्छा ही नहीं रखते।

हैडॉक के शब्दों में, ''अगर परीक्षा प्रणाली को रटंतू से बदलकर ऐसा बना दिया जाए कि विद्यार्थियों की समझ के स्तर, नई समस्याओं का विश्लेषण कर पाने की क्षमता, समीक्षात्मक सोच और विश्लेषण आदि का मूल्यांकन हो - तो वह मौजूदा व्यवस्था के लिए खतरा बन जाएगी। आखिर आम जनता की रचनात्मक क्षमताओं और सोच को बौना बनाए रखना सत्ताधारियों के हित में ही तो है'' (पृ. 39-40)। परीक्षा प्रणाली पर समग्र रूप से शोध की आवश्यकता है। शिक्षा में समता और जनतांत्रिक मूल्यों की रक्षा हेतु देश की शिक्षा प्रणाली में व्यापक बदलाव करने होंगे।

संदर्भ

इस्कस्टीयन, एम.ए. एवं नोह, एच.जे. (1989). फॉम्स एण्ड फंक्शन्स ऑफ सैकण्डरी-स्कूल-लीविंग एग्जामिनेशनस. कम्पेरेटिव एजुकेशन रिव्यू. 33(3). 295-316.

नोह, एच.जे. एवं इस्कस्टीयन, एम.ए. (1989), ट्रेड ऑफस् इन एग्जामिनेशन पॉलिसिज : एन इन्टरनेशनल कम्पेरेटिव पर्सपेक्टिव. ऑक्सफोर्ड रिव्यू ऑफ एजुकेशन. 15;1). 17-27.

कुमार, के. (1985). रिप्रोडक्शन और चेंज? एजुकेशन एण्ड एलीट्स इन इण्डिया. इकॅनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली. 20;30). 1280-1284.

कुमार, के. (1988, अगस्त 10). मैरिट ऑफ एग्जाम्स. हिन्दुस्तान टाइम्स. दैनिक समाचार पत्र.

कुमार, कृ. (2000, जून 11). माया मशीन. जनसत्ता. दैनिक समाचार पत्र.

कुमार, कृ. (2001, फरवरी 18). चंद टरै. सूर टरै. जनसत्ता. दैनिक समाचार पत्र.

कुमार, कृ. (2004, मई 2). चूती हुई इमारत. जनसत्ता. दैनिक समाचार पत्र.

कुमार, कृ. (2005, मार्च 20). बच्चों का बलिदान. जनसत्ता. दैनिक समाचार पत्र.

मालवीय, मु. (1997). पावरझण्डा. 57 सालों में .. .. शैक्षिक संदर्भ. 19. 22–28.

मैथ्यूज, जॉन सी. (1985). एग्जामिनेशन्स : ए कमेन्ट्री. लंदन : जॉर्ज एलेन एण्ड अनविन.

गुडमैन, वाई एम. एवं गुडमैन, के.एस. (1990). वाइगोट्स्की इन ए होल–लैंग्वेज पर्सपेक्टिव. लुईस. सी. मॉल (सं.) वाइगोट्स्की एण्ड एजुकेशन : इन्स्ट्रक्शनल इम्प्लीकेशन्स् एण्ड अप्लीकेशन्स् ऑफ सोशिओहिस्टोरिकल साइकोलजी. यू.एस. ए. : केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

सद्गोपाल, ए. (2017, जनवरी 13). नो पास मार्वफ्स्. द इण्डियन एक्सप्रेस. दैनिक समाचार पत्र.

शहजाद, मो. (2016, दिसम्बर 26). शिक्षा में सुधार की सार्थकता. दैनिक जागरण. दैनिक समाचार पत्र.

शर्मा, प्रे. (2017, जनवरी 1). परीक्षा वापसी के अगर मगर. जनसत्ता रविवारी. दैनिक समाचार पत्र.

सरूप, एम. (1982). एजुकेशन. स्टेट एण्ड क्राईसिस : ए मार्क्सिस्ट पर्सपेक्टिव. लंदन : रूटलेज एण्ड केगन पॉल.

ब्रॉडफूट, पी. (1979). एसेसमेन्ट. स्कूल्स एण्ड सोसाइटी. यू.एस. ए : मैथ्यूइन.

एन.सी. ई.आर. टी. (2008). परीक्षा प्रणाली में सुधार. राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार–पत्र. नई दिल्ली : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्.

द हिन्दुस्तान टाइम्स (2016, दिसम्बर 22). नो स्टॅमेक फॉर हार्ड च्वाइस. संपादकीय. दैनिक समाचार पत्र.

द हिन्दु. (2016, नवम्बर 24). बैक टू क्लास 10 बोर्ड एग्जॉम्स. संपादकीय. दैनिक समाचार पत्र.

जनसत्ता. (2016क, नवम्बर 16). परीक्षा का प्रश्न. संपादकीय. दैनिक समाचार पत्र.

जनसत्ता. (2016ख, दिसम्बर 22). परीक्षा का प्रारूप. संपादकीय. दैनिक समाचार पत्र.

कुमार, के. (2016, दिसम्बर 19). डॉन्ट ब्रिंग बैक दा क्लास 10 बोर्ड एग्जाम्स. हिन्दुस्तान टाइम्स. दैनिक समाचार पत्र.

हैडॉक, के. (1999). परीक्षाएँ और सिर्फ परीक्षाएँ. शैक्षिक संदर्भ. 28. 37–44.

ओडिनडेहल, नो.वि. (2011). एजुकेशनल एसेसमेन्ट एण्ड नेशनल वैल्यू. टेस्टवाइज. न्यूयार्वफ : रोमेन एण्ड लिटिलफील्ड पब्लि. 39–55.

आडवाणी, शा. (2016). मूल्यांकन व्यवहार के क्षेत्र में नए रूझान : अधिगम के लिए मूल्यांकन. पू. बत्रा एवं यो. दत्त (संपा.) सीखना. सिखाना और मूल्यांकन में (54–59). प्रकाशन अलिखित: रिजिनल रिसोर्स सेन्टर फॉर एलीमेन्ट्री एजुकेशन. सहपाठी पब्लिकेशन.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 23, अंक 1, अप्रैल 2016

शिक्षक और शिक्षिकाओं से आलोचनात्मक होने की उम्मीद और उस उम्मीद पर खरा उतरने की चुनौती

बीरेन्द्र सिंह रावत*

सारांश

शिक्षणशास्त्र को मौटे तौर पर तीन उपागमों में विभाजित किया जा सकता है। व्यवहारवादी उपागम, रचनात्मक उपागम तथा आलोचनात्मक उपागम। स्वतंत्र भारत के शिक्षाई इतिहास पर नजर डालें तो हम पाएंगे कि किसी-न-किसी प्रकार से यह उम्मीद की गई है कि शिक्षक और शिक्षिकाएँ आलोचनात्मक चेतना से लैस हों। विभिन्न शिक्षा आयोगों, समितियों तथा नीतियों में शिक्षा की प्रक्रिया को आलोचनात्मक प्रक्रिया के रूप में समझा गया है। शिक्षक-शिक्षिकाओं और विद्यार्थियों से उम्मीद की गई है कि वे शिक्षा का उपयोग चेतना को मुक्त करने में करेंगे। लेकिन सवाल उठता है कि मुक्ति किन बातों से? इसके जवाब में बार-बार यह दोहराया गया है कि भारत का इतिहास जहाँ एक ओर बेहतर समाज के निर्माण हेतु संघर्षों का रहा है वहीं दूसरी ओर इसका इतिहास विभिन्न प्रकार के दमन तथा शोषण का भी रहा है। शिक्षा से यह उम्मीद की गई है कि वह व्यक्ति को शोषित होने से और शोषण करने से मुक्त करेगी। इस कार्य हेतु शिक्षक की आलोचनात्मक भूमिका पर जोर दिया गया है।

किसी शिक्षक के सामने ऐसी विषय वस्तु आने पर क्या होता है जो उसकी अलोकताँत्रिक सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यताओं को चुनौती देती हो? यदि शिक्षक अपनी मान्यताओं पर अड़िग रहे तो उसके इस व्यवहार का किन

*फील्ड वर्कर, शिक्षाशास्त्र विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

आधार पर मूल्यांकन किया जाए? आजाद भारत का शिक्षाई विमर्श इस दिशा में मार्गदर्शन करता है।

प्रस्तुत पर्चे के लिए माध्यमिक शिक्षा आयोग, राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप 2005, अध्यापक शिक्षा हेतु राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप–2009 का संदर्भ लेने के साथ–साथ राज्य सरकारों तथा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा तैयार पाठ्यपुस्तकों से उदाहरण लिए गए हैं।

उद्देश्य

1. भारतीय शैक्षिक दस्तावेजों में शिक्षक और शिक्षिकाओं से आलोचनात्मक होने की उम्मीद का विश्लेषण।
2. पाठ्यपुस्तकों से लिए गये उदाहरणों के सहारे आलोचनात्मक होने की चुनौती का विश्लेषण।
3. शोधार्थी के अनुभव के सहारे आलोचनात्मक होने की चुनौती का विश्लेषण।

स्वतंत्र भारत के शिक्षाई इतिहास पर नजर डालें तो हम पाएंगें कि किसी–न–किसी रूप में यह उम्मीद की गई है कि शिक्षक और शिक्षिकाएँ आलोचनात्मक चेतना से लैस हों। विभिन्न शिक्षाई आयोगों, नीतियों, तथा अन्य दस्तावेजों में शिक्षा की प्रक्रिया को आलोचनात्मक प्रक्रिया के रूप में समझा गया है। शिक्षक–शिक्षिकाओं और विद्यार्थियों से उम्मीद की गई है कि वे शिक्षा का उपयोग चेतना को मुक्त करने में करेंगे। लेकिन सवाल उठता है कि मुक्ति किन बातों से। इसके जवाब में बार–बार यह दोहराया गया है कि भारत का इतिहास जहाँ एक ओर बेहतर समाज के निर्माण हेतु संघर्षों का रहा है वहीं दूसरी ओर इसका इतिहास विभिन्न प्रकार के दमन तथा शोषण का भी रहा है। शिक्षा से यह उम्मीद की गई है कि वह व्यक्ति को शोषण से और शोषण करने से मुक्त करेगी। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु शिक्षा आयोगों तथा शिक्षा नीति में शिक्षक की आलोचनात्मक भूमिका पर जोर दिया गया है।

एक शिक्षाकर्मी के रूप में काम करते हुए मुझे 22 वर्ष हो गए। अपने अनुभव के दौरान मुझे अध्यापन के साथ–साथ अध्यापक तथा अध्यापिकाओं के साथ संवाद करने

* शिक्षाशास्त्र विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा अध्यापक शिक्षा पर 11–12 फरवरी, 2016 को आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय सम्मलेन में 11 फरवरी को पढ़े गये पर्चे का संशोधित रूप।

के अनेक अवसर मिले प्रस्तुत पर्चा उन अनुभवों को आकार देने की कोशिश का एक नतीजा है।

प्रस्तुत पर्चे के लिए मैने माध्यमिक शिक्षा आयोग की रिपोर्ट (Report of the Secondary Education Commission 1952–53), राष्ट्रीय शिक्षा आयोग की रिपोर्ट (Report of the Education Commission 1964-66.1970. Part-1), चट्टोपाध्याय आयोग की रिपोर्ट (Report of the National Commission on teachers 1983-85. Part-I & Part-II), राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप 2005, अध्यापक शिक्षा हेतु राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप–2009 (National Curriculum Framework for Teacher Education-2009) आदि का संदर्भ लनें के साथ–साथ राज्य सरकारों तथा एनसी.ई.आर.टी. द्वारा तैयार की गयी पाठ्यपुस्तकों से उदाहरण लिए हैं।

एक शिक्षाकर्मी के रूप में अध्यापक–शिक्षक/शिक्षिकाओं और टीचर–एजुकटेर्स के साथ हुए शैक्षिक अनुभवों में से एकाध अनुभव के सहारे भी शिक्षक/शिक्षिकाओं के आलोचनात्मक होने की चुनौतियों को समझाने का प्रयास किया जाएगा।

शैक्षिक दस्तावेजों में आलोचनात्मक होने की उम्मीद

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 में कहा गया है कि *जिन सिद्धाँतों पर राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था की परिकल्पना की गई है वे हमारे संविधान में ही निहित हैं।* (पैरा 3.4:2)। राष्ट्रीय शिक्षक आयोग की माने तो लोकतंत्र, पंथनिरपेक्षता, तथा सामाजिक न्याय संविधान में वर्णित तीन सबसे महत्त्वपूर्ण मूल्य हैं। (Report of the National Commission on teachers. Part-II: 57)। आयोग का मानना है कि *जब तक किसी के व्यक्तिगत विश्वास उन राष्ट्रीय मूल्यों, जिन्हें बढ़ावा दिया जाना है, से नहीं टकराते तब–तक उन्हें अनदेखा किया जा सकता है। (वही: 56)। आयोग व्यक्तिगत विश्वास की सीमा का सीमांकन करता है। भारत की आजादी के साथ ही व्यक्ति को नागरिक बनाने की राष्ट्रीय परियोजना पर काम किया जाने लगा। स्कूली शिक्षा पर विचार करने के लिए बने माध्यमिक शिक्षा आयोग, 1952 के अनुसार लोकतंत्र में नागरिकता की परिभाषा में कई बौद्धिक, सामाजिक व नैतिक गुण शामिल होते हैं: एक लोकतांत्रिक नागरिक में सच को झूठ से अलग छाँटने, प्रचार से तथ्य अलग करने, धर्मांधता और पूर्वग्रहों के खतरनाक आकर्षण को अस्वीकार करने की समझ व बौद्धिक क्षमता होनी चाहिए... वह न तो पुराने को इसलिए नकारे क्योंकि वह पुराना है, न ही नए को इसलिए स्वीकार करे क्योंकि वह नया है बल्कि उसे निष्पक्ष रूप से दोनों को परखना चाहिए और साहस से*

उसको नकार देना चाहिए जो न्याय व प्रगति के बलों को अवरुद्ध करता हो...। (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005. एन.सी.ई.आर.टी. नयी दिल्ली: 7–8 पर उधरित है)। इस प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर संवैधानिक मूल्यों और शिक्षा के बीच स्पष्ट रिश्ते कायम किए गए।

1952–53 में माध्यमिक शिक्षा आयोग *''धार्मांधता और पूर्वग्रहों के खतरनाक आकर्षण को अस्वीकार करने की समझ व बौद्धिक क्षमता''* को विकसित करने पर बल दतेा है। ऐसा हो सके इसके लिए जरूरी है कि ''धार्मांधता और पूर्वग्रहों'' को बनाए रखने वाले मिथकों को उधेड़कर रखा जाए। राष्ट्रीय शिक्षा आयोग 1964–66 ने तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था का मूल्यांकन पेश करते हुए कहा है कि शिक्षा ऐसी रूचियों, वृत्तियों और मूल्यों को विकसित करने पर बल नहीं दे रही है जो लोकतांत्रिक और समाजवादी समाज के लिए जरूरी हैं। (Report of the Education Commission.1970: 11)। यह आयोग इस बात को लेकर चिंतित है कि हम शिक्षा के जरिए लोकतांत्रिक और समाजवादी मूल्यों को विकसित नहीं कर पाए हैं। राष्ट्रीय शिक्षा आयोग के स्वर में स्वर मिलाते हुए राष्ट्रीय शिक्षक आयोग में कहा गया है कि *''मानव इतिहास में विज्ञान सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही है। लेकिन मानवीयता से रहित विज्ञान ने इंसान को हिंसक बना दिया है। शक्तिशाली राष्ट्र कमजोर राष्ट्रों पर धौंस जमाते हैं। वे धरती और इसके संसाधनों को इस प्रकार बांटते हैं कि इन संसाधनों का अधिकांश दुनिया की छोटी सी संख्या के पास चला जाता है। भारत दुनिया का प्रतिबिंब पेश करता है। आज भी हमारी बहुसंख्यक जनता के लिए जीने की बुनियादी सुविधाएँ जैसे भोजन, कपड़े, छत और शिक्षा चुभते हुए भ्रम बने हुए हैं।''* (National Commission on teachers. Part-I: 7)। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, तथा राष्ट्रीय शिक्षक आयोग, तीनों ही लोकतंत्र और सामाजिक न्याय जैसे सरोकारों के बारे में चिंता व्यक्त करते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षक आयोग ने बदलते हुए शैक्षिक परिदृश्य की दो प्रवृत्तियों की पहचान की है। आयोग के अनुसार शिक्षक विद्यार्थी परिदृश्य बदल रहा है। अधिक से अधिक लोगों के शिक्षित होने के कारण दो तरह की चुनौतियाँ पेश आ रही हैं। पहला सीखने और सिखाने वाले की सामाजिक पृष्ठभूमि तथा सांस्कृतिक रूझान के कारण शैक्षिक प्रक्रिया के सम्मुख नयी चुनौतियाँ आ गयी हैं। दूसरा शिक्षा के दायरे में सामाजिक न्याय की माँग भी शामिल कर दी गई है। (Report of the National Commission on teachers. Part-II: 55)। भारत के इतिहास में एक समय ऐसा रहा कि दलितों और

लड़कियों के लिए सार्वजानिक शिक्षा के दरवाजे बंद थे। लेकिन आजाद भारत में नए विधान के लागू होने के साथ ही कक्षाओं की एकरसता टूटने लगी। कक्षाओं के बहुसांस्कृतिक बन जाने से किसी शिक्षिका और शिक्षक के सामने नए किस्म की चुनौतियाँ हैं। इन चुनौतियों को केवल मनोवैज्ञानिक स्तर की चुनौतियाँ भी माना जा सकता है और शिक्षणशास्त्रीय भी। शिक्षणशास्त्रीय, यानि पढ़ाने के तरीकों में सामाजिक स्वप्न भी शामिल हों, नयी चुनौतियों का सामना करने की दिशा में आगे बढने के लिए शिक्षक–शिक्षा पर तैयार किया गया आधार–पत्र कुछ दिशानिर्देश करता है। इस आधार–पत्र के अनुसार *''शिक्षा पर उस परिवेश का बड़ा प्रभाव होता है जिससे शिक्षक और विद्यार्थी आते हैं। स्कूल और कक्षा के सामाजिक संदर्भ का सीखने की प्रक्रिया पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इसे देखते हुए विद्यार्थी के मनोवैज्ञानिक पहलुओं की जगह उसके सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संदर्भों पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए।''* (शिक्षक–शिक्षा, 2009. पेरा 6.2.5: 22)। इसी आधार पत्र में आगे कहा गया है कि *''शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम में आधुनिक भारतीय समाज के मुख्य मुद्दों जैसे समाज का बहुलतावादी स्वभाव और अस्मिता के मुद्दे, जेंडर, समानता और गरीबी के मुद्दों को महत्व दिया जाना चाहिए। इससे शिक्षकों को, शिक्षा को संदर्भित करने में सहूलियत होगी और शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों की गहरी समझ और समाज से उसके संबंधों का बोध भी हो सकगो।* (वही: 22)।

भारत जैसे बहुसांस्कृतिक देश में पढ़े–लिखे लोगों से क्या उम्मीद की गई? भारत जिसकी बहुत सी सांस्कृतिक विरासतें हैं। ये विरासतें आपस में टकराती भी हैं। इनके उद्देश्यों में अंतर हो सकता है। इनके सामाजिक स्वप्नों में अंतर हो सकता है। विविधता से भरे वातावरण में पढ़े–लिखे लोगों की भूमिका को समझाते हुए राष्ट्रीय शिक्षक आयोग का मत है कि *''ज्ञानवान लोग विरासत के संप्रेषक (transmitters) होते हैं। उनके इस काम पर सवाल नहीं उठाया जा सकता। लेकिन विरासत को लेकर नजरियों में अन्तर हो सकता है। और जिन उद्देश्यों के लिए विरासत को संप्रेषित किया जा रहा है, वे फर्क हो सकते हैं। इस संदर्भ में केन्द्रीय मूल्य आलोचनात्मक चेतना (critical awareness) पर बल देना है।''* (Report of the National Commission on teachers. Part-II: 59)। यह आयोग पढ़े–लिखे लोगों की एक विशेष भूमिका देखता है। यह आयोग उनके तठस्थ रहने को नकारते हुए कहता है कि *''कोई बौद्धिक सामाजिक दृश्यों का अवलोकनकर्ता मात्र नहीं हो सकता/सकती। उसकी जो भी विशेषताएँ हैं, वह सामाजिक प्रवृत्तियों के*

विश्लेषणकर्ता की होती है। बिना भय के सामाजिक आलोचना कर सकने वाली सामाजिक चेतना को मूल्य के रूप में विकसित करने पर बल दिया जाना चाहिए।'' (वही: 59)। विरासत से चली आ रही मान्यताओं और व्यवहारों का बिना भय के आलोचनात्मक विश्लेषण करना, शिक्षित व्यक्तियों की एक खासियत बताई गयी है।

ऐसे समय में जब समाज के सभी तबकों की शिक्षा के प्रति रुचि में वृद्धि दर्ज की गयी है, शिक्षक-शिक्षिकाओं और अध्यापक-शिक्षक और शिक्षिकाओं के सामने कुछ नयी चुनौतियाँ हैं। इनमें से दो चुनौतियों का जिक्र राष्ट्रीय शिक्षक आयोग के हवाले से किया जा चुका है। ऐसे में यह लाजिमी जान पड़ता है कि अध्यापक शिक्षा का कार्यक्रम स्कूली शिक्षा की चुनौतियों को सामने रखकर तैयार किया जाए। अध्यापक शिक्षा के लिए बनाए गए राष्ट्रीय पाठय्चर्या प्रारूप में कहा गया है कि अध्यापक शिक्षा पाठ्यचर्या प्रारूप को स्कूली शिक्षा के पाठ्यचर्या प्रारूप के साथ सामंजस्य में होने की जरूरत है। एक शिक्षक को स्कूली संदर्भ में उठने वाली जरूरतों और मांगों के हिसाब से तैयार किया जाना चाहिए। (National Curriculum Framework for Teacher Education. 2009:2)। यह जरूरतें शिक्षा और कक्षाओं को आलोचनात्मक चेतना के आधार पर चलाने की हैं। ऐसी चेतना लोकतंत्र, वैज्ञानिक सोच, सामाजिक न्याय जैसे संवैधानिक मूल्यों की जमीन पर पनपे ।

पाठ्यपुस्तक तथा आलोचनात्मक होने की चुनौती

उदाहरण 1

दिल्ली-विश्वविद्यालय के बी.एड. कार्यक्रम का एक विद्यार्थी-शिक्षक, शिक्षण-अभ्यास के दौरान शिक्षा-निदेशालय दिल्ली के अंतर्गत चलने वाले एक स्कूल में कक्षा-9 के विद्यार्थियों को अर्थशास्त्र पढ़ा रहा था। उसने अपनी पाठयोजना राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की 9वीं कक्षा की पाठ्यपुस्तक ''इकोनोमिक्स'' के तीसरे पाठ ''पावरटी एज ए चैलेंज'' के एक अंश के आधार पर तैयार किया था। उसकी पाठ-योजना का विषय था-एनटी पावरटी मेजर्स। अपने पाठ का परिचय देते हुए उसने बताया कि सरकार द्वारा गरीबों की भलाई के लिए बहुत कुछ किया जाता है। उसने बताया कि सरकार चाहती है कि देश का हर व्यक्ति शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, मनोरंजन आदि के संदर्भ में समान अवसरों का भागी बने। पाठ का परिचय देने के बाद उसने नरेगा (नेशनल रूरल एम्लॉयमेंट गारंटी एक्ट-2005) का विवरण देते हुए इस कानून की विषेशताएँ बतायीं।

उन विशेषताओं के अनुसार इस कानून के तहत देश के 200 जिलों के ग्रामीण परिवारों को 100 रुपये प्रतिदिन के हिसाब से 100 दिन का निश्चित रोजगार मिलने की गारंटी है। उस विद्यार्थी-शिक्षक ने बताया कि सरकार के इस कदम से देश के ग्रामीण परिवारों की गरीबी समाप्त हो जाएगी और उनमें रहने वाले शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, भोजन, जैसी मूलभूत जरूरतों को हासिल कर सकते हैं।

कक्षा के बाद मैंने उस विद्यार्थी-शिक्षक से पूछा कि क्या उसको विश्वास है कि नरेगा के कारण ग्रामीण परिवारों की मूलभूत जरूरतें पूरी हो जाएँगी? इस सवाल का उत्तर उसने हाँ में दिया। मैंने सवाल को थोड़ा सा बदलकर पूछा कि क्या उसे तार्किक रूप से विश्वास है कि नरेगा के कारण ग्रामीण परिवारों की मूलभूत जरूरतें पूरी हो जाएँगी? अबकी बार उसने कहा- पता नहीं। मैंनें पूछा कि क्या पुस्तक में दी गयी सूचनाओं का उपयोग इस प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए किया जा सकता है? उसने कहा कि किया तो जा सकता है, लेकिन कैसे किया जाए? उसके द्वारा समझने की जिज्ञासा व्यक्त करने के कारण हमनें चर्चा करते हुए निम्नलिखित गणना करनी शुरू की। गणना करने के इस क्रम में मैं प्रश्नकर्ता की भूमिका में रहा:

प्रश्न: नरेगा के तहत रोजगार किसको मिलेगा?

उत्तर: परिवार को

प्रश्न: हर परिवार को कितने दिन का रोजगार मिलेगा?

उत्तर: 100 दिन का

प्रश्न: एक परिवार को एक दिन के काम के बदले कितने रुपये मिलेंगे?

उत्तर: 100 रुपये

प्रश्न: इस काननू के तहत एक परिवार को एक साल में अधिकतम कितने रूपये मिलेंगे?

उत्तर: 100 दिन गुणा 100 रुपये बराबर दस हजार रुपये।

प्रश्न: हर परिवार की प्रतिदिन की औसत आमदनी कितनी होगी?

उत्तर: दस हजार को 365 से भाग कर दों यह 27.4 रूपये आएगा।

प्रश्न: मान लीजिए कि एक परिवार में चार सदस्य हैं तो नरेगा के अंतर्गत प्रति व्यक्ति प्रतिदिन की औसत आमदनी कितनी होगी?

उत्तर: 27.4 रुपये को 4 से भाग कर दो तो 6.8 रुपये आएगा।

प्रश्न: क्या प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति 6.8 रूपये के बाल पर ग्रामीण परिवारों की मूलभूत सुविधाओं तक पहुँच संभव हो पाएगी?

उत्तर: इतनें में तो उस समय राशन भी आना मुश्किल लग रहा है।

प्रश्न: 6.8 रुपये में राशन भी आना संभव है या नहीं इसका उत्तर खोजने के लिए क्या करना मददगार होगा?

उत्तर: इसके लिए ग्रामीण परिवारों की जरूरतों की सूची बनाई जाए। सूची में शामिल चीजों के दामों का एक तार्किक अंदाज लगाया जाए और उसके आधार पर गणना की जाए।

इतनी चर्चा के बाद मैंने सवालों के रुख को बदलते हुए पूछा कि क्या हमारे द्वारा नरेगा का किया गया विश्लेषण किसी जटिल ज्ञानशास्त्र की माँग करता है? उसने कहा कि नहीं यह तो एक साधारण सी लगने वाली गणना है। यह पूछने पर कि क्या कारण है कि वह इस तरह की साधारण सी गणना भी नहीं कर सका? इस सवाल के उत्तर में उसने कहा कि गणना तो आसान है लेकिन इस तरह का काम करने की दिशा में बढ़ाने वाला मानस तैयार होना मुश्किल है। सूचनाओं को आलोचना के स्तर तक ले जाने की राह में हमने तीन स्तरों की बाधाओं को रेखांकित किया। पहली बाधा बी.एड. में आने से पहले की पढ़ाई के तौर तरीकों में है। उस पढ़ाई में सूचनाओं को विश्लेषित करने की क्षमताओं के विकास पर ध्यान नहीं दिया गया। दूसरी बाधा पाठ-योजना तैयार करने की प्रक्रिया के कारण उत्पन्न होती है। किसी दी गयी विषय-वस्तु को उस विषय की प्रकृति के अनुसार उपयोग करने की क्षमता के विकास पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता। तीसरी बाधा पाठ्यपुस्तकों में सामग्री के प्रस्तुतीकरण के तरीकों के कारण पैदा होती है। सामग्री को विवरण की तरह प्रस्तुत किया जाना न कि प्रश्नांकित करते हुए प्रस्तुत करना। इस पाठ के अंत में भी ऐसे प्रश्न और गतिविधि नहीं दी गयी है जो सूचनाओं पर आलोचनात्मक होने की प्रकृति का विकास करने में सहायक हो। इस पाठ का प्रश्न संख्या 8- ''निर्धनता उन्मूलन की वर्तमान सरकारी रणनीति की चर्चा करें'' यह प्रश्न पाठ्यपुस्तक में दिए गए गरीबी उन्मलून के उपायों को याद करनें की प्रेरणा दतेा है। बर्नस्टीन (1985: 268) के शब्दों में कहें तो यह पाठ समेकित प्रकार के पाठ्यक्रम (इंटीग्रेटेड टाइप करिकुलम) की बजाय ढेर प्रकार के पाठ्यक्रम (कलेक्शन टाइप करिकुलम) का नमूना पेश करता है ।

शिक्षक-प्रशिक्षक: आलोचनात्मक होने की चुनौती का विश्लेषण

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप-2005 तथा अध्यापकों के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप-2009 के आलोक में देश के अनेक राज्यों ने अपनी-अपनी स्कूली शिक्षा तथा अध्यापक शिक्षा की पाठ्यचर्याओं की पुनर्रचना का काम शुरू किया। राजस्थान भी उन्हीं राज्यों में से एक था। इस राज्य ने जनवरी 2012 में अपनी स्कूली और अध्यापक-शिक्षा की पाठ्यचर्याओं की पुनर्रचना का काम शुरू किया। राज्य की राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान (SIERT), उदयपुर, राजस्थान ने फरवरी 2012 से मुझे भी इस काम में शामिल किया। अनेक कामों के साथ-साथ मैं जिन कामों में शामिल हुआ वह था सेवा-पूर्व अध्यापक-शिक्षा के लिए एक नए पर्चे का पाठ्यक्रम, उस पाठ्यक्रम के आधार पर पठन-सामग्री का निर्माण, तथा उस पाठ्यक्रम को पढ़ाने के लिए तैयार किए जाने वाले टीचर-एजुकेटर्स को प्रशिक्षण देना।

SIERT, उदयपुर, ने सन 2014 की 1 मई से 3 मई तक राज्य के DIET तथा SIERT के टीचर-एजुकेटर्स के लिए ''भाषा, संज्ञान और समाज'' पर्चे के लिए तैयार की गई पठन-सामग्री पर एक तीन दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन किया। उदयपुर में होने वाले उस प्रशिक्षण कार्यक्रम में मैं भी एक संसाधन व्यक्ति था। SIERT के डिप्लोमा इन एजुकेशन के विद्यार्थियों के लिए तैयार, ''भाषा, संज्ञान, और समाज'' नाम का यह नया पर्चा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप-2005 में भाषा के संदर्भ में दर्ज उन विचारों पर अमली जामा पहनाने का प्रयास था जो भाषा को ''माध्यम भाषा'' और ''भाषा विषय के रूप'' में इस्तेमाल करने तथा सीखने से व्यापक सरोकारों के साथ जोड़ते हैं।

इस पर्चे में एक बिंदु ''भाषा और जेंडर'' का भी है। उस प्रशिक्षण कार्यक्रम में इस बिंदु पर आने के लिए मैंनें एक नया तरीका अपनाया । मैंने 40 टीचर-एजुकेटर्स को 5 भागों में बाँटा। हर समूह को पहली से आठवीं की अलग-अलग विषय की एक किताब देकर कहा कि उन्हें उस किताब के एक पाठ के उद्देश्यों को चार्ट पेपर पर लिखकर बारी-बारी से सबके सामने पेश करना है। जब वे लिखने के काम की तरफ बढ़ने लगे तो मैं उनमें से एक समूह के पास जाकर आग्रह किया कि वे अपने उद्देश्यों को स्त्रीवाचक संबोधनों में लिखें। यानि ''इस पाठ से बच्चें यह समझ पाएंगे कि .....'' की जगह ''इस पाठ से बच्चियाँ यह समझ पाएंगी कि .....'' लिखें। पहले तो उस समूह को इस बात के लिए राजी करने में मुझे काफी बहस करनी पड़ी। लेकिन अंत में मैंने यह कहकर बात मनवा ली कि इसके आधार पर आगे की चर्चा के बिंदु निकलेंगे।

हर समूह ने बारी-बारी से अपने द्वारा चुना गया पाठ और उस पर लिखे गए उद्देश्यों को पढ़कर सुनाया। इस क्रम में जैसे ही उस समूह ने, जिसने स्त्रीवाचक संबोधनों का उपयोग करते हुए उद्देश्य लिखे थे, अपने द्वारा लिखे गये उद्देश्यों को पढ़ना शुरू किया। बहुत से टीचर-एजुकेटर्स ने एक अपनी आपत्ति दर्ज की। उन्हें यह उद्देश्य कि ''इस पाठ को पढ़ने के बाद बच्चियाँ आवास का मतलब समझ पाएंगी'' एकदम गलत लग रहा था । उद्देश्य को स्त्रीवाचक संबोधनों की मदद से लिखने को गलत ठहराने वालों में स्त्री और पुरुष दोनों टीचर-एजुकटेर्स थे। दोनों का ही मन और मस्तिष्क समानता के विरुद्ध और असमानता के पक्ष में बना दिया गया था । कम से कम इस प्रसंग में तो ऐसा ही निकलकर आया ।

अब मेरे पास भाषा और जेंडर के आपसी रिश्तों पर बात शुरू करने का सही अवसर था। यह पूछने पर की क्या लिखे गये उद्देश्यों की विषय-वस्तु में गड़बड़ी है? वे बोले कि नहीं विषय-वस्तु तो ठीक है। लेकिन ''ऐसे'' कैसे लिख सकते हैं? यह पूछने पर कि ''ऐसे'' लिखने से क्या दिक्कत हो जाएगी? वे बोले दिक्कत तो कोई नहीं है लेकिन कुछ अजीब सा लग रहा है।

भाषा और जेंडर के बीच संबंधों को समझने के लिए व्याकरण तथा भाषा के समाजशास्त्रीय दोनों पक्षों को खंगालने की आवश्यकता है। हमारे समाज में ऐसे प्रसंगों की भरमार है जो पितृसत्ता के ढांचे को ठोस रूप प्रदान करते हैं। स्त्री पर पुरुष के प्रभुत्व तथा वर्चस्व के विचार को स्थापित करने के लिए भाषा को एक साधन के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। (भाषा, संज्ञान, और समाज. 2014: 16)।

किसी बात के संप्रेषण में पुरुषवाचक संबोधनों की जगह या उसके साथ-साथ स्त्रीवाचक संबोधनों का उपयोग टीचर-एजुकेटर्स को अजीब लग रहा था। इस ''अजीब'' लगने को समझने के लिए हमने सामाजीकरण, वर्चस्व, तथा एकशेष की अवधारणाओं का सहारा लिया। एकशेष व्याकरण की ऐसी अवधारणा है जिसमें स्त्रीलिंग तथा पुल्लिंग को संबोधित करने के लिए पुल्लिंग या स्त्रीलिंग शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जैसे आदमी कहने पर यह मान लिया जाता है कि उसमें औरतें भी शामिल हैं, जबकि आदमी पुल्लिंग शब्द है और औरतें स्त्रीलिंग शब्द है। इस तरह एक लिंग के व्यक्तित्व को दूसरे लिंग के व्यक्तित्व में विलीन हो जाने के विचार को भाषा स्थापित करती है तथा विस्तार देती है।

'''एकशेष' के ढ़ेर सारे प्रयोग हमसे होते हैं। समाज का मानसिक झुकाव जिधर होता है- दो लिंगों में से उसी एक का ग्रहण कर शेष को उसी में वह समाहित मान लेता है। संकेत स्पष्ट है कि पुरुष वर्चस्व के इस समाज में प्राय: पुल्लिंग रह जाता है और स्त्रीलिंग छूट जाता है। जैसे 'बच्चे और बच्चियाँ खेल रहे हैं।''– ऐसा वाक्य प्रयोग करने में हम परेशानी का अनुभव करते/करती हैं (क्योंकि स्त्री को अलग से जगह देने में समाज ही नहीं, सरकार भी परेशानी का अनुभव करती है और उसे पुरुष/पति के घर में ही ठूँस देती है, भले उसकी अलग से नौकरी हो)। हम 'एकशेष' में बोलते/बोलती हैं– 'बच्चे खेल रहे हैं।' इसी प्रकार, 'पचास आदमी बैठ सकते हैं' का प्रयोग कर हम मानकर चलते/ चलती हैं कि इसमें 'औरतें' भी आ गईं। पर, 'औरतें बैठ सकती हैं'– इस प्रयोग में हम मानकर चलते/चलती हैं कि इसमें 'आदमी' नहीं आ पाते।

भाषा में कार्यरत यह पूरी प्रवृत्ति पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना के उस विराट दोश की छाया है, जिसमें स्त्री को कहीं भी जगह न देने पर मौन सहमति है। हर जगह 'पुत्र' शब्द चला है, 'भाई' शब्द चला है, 'भाई-चारा' शब्द चला है। लगता है 'बहन' रहती ही नहीं दुनिया में।'' (पाठक. 2010: 382-401)।

पाठ्यपुस्तकों से कुछ और उदाहरण

पाठ्यपुस्तकों में एकशेष के अनेक उदाहरण मिलते हैं। इससे पता चलता है कि देश में स्त्रियों को हाशिए पर रखने का विचार अब भी प्रबल है। आइए इस बात को समझने के लिए पाठ्यपुस्तकों से लिए गए कुछ उदाहरणों पर विचार किया जाय।

उदाहरण -2

''गीत के बारे में'' उप-शीर्षक के अर्न्तगत दिया गया प्रश्न - ''इस गीत की किन पंक्तियों को तुम अपने आसपास की जिंदगी में घटते हुए देख सकते हो?'' (साथी हाथ बढ़ाना. 2006; 56)।

उदाहरण -3

''गीत से आगे'' उप-शीर्षक के अन्तर्गत दिया गया प्रश्न -इस गीत को तुम किस माहौल में गुनगुना सकते हो? (वही)।

उदाहरण -4

''निबंध से आगे'' उप-शीर्षक के अर्न्तगत दिया गया प्रश्न - ''तुम्हें किसी ऐसे व्यक्ति

से मिलने का मौका मिले जिसे दिखाई न देता हो तो तुम उससे प्रकृति के उसके अनुभवों के बारें में क्या-क्या पूछना चाहोगे और क्यों?'' (जो देखकर भी नहीं देखते वही:105)।

उदाहरण-5

''आपके अनुसार आपकी पीढ़ी के लिए सामाजीकरण का सबसे प्रभावी अभिकरण क्या है? यह पहले अलग कैसे था, आप इस बारे में क्या सोचते हैं?'' (संस्कृति तथा सामाजीकरण. 2009: 91)

उदाहरण-6

पाठ से आगे उप-शीर्षक के अर्न्तगत दिया गया प्रश्न-'परोपकार से आप क्या समझते हैं? ऐसे कार्यों की सूची बनाइए जिन्हें आप परोपकार का कार्य समझते हैं।'' (रहीम के दोहे. 2013-2014: 59)।

उदाहरण 2 से 6 में दिए गए प्रश्न बच्चों से पूछे गए हैं लेकिन यह मान लिया गया है कि यह प्रश्न बच्चियों से भी पूछे गए हैं। पाठ्यपुस्तकों के जरिए एकशेष की अवधारणा को जिंदा रखने से भी शिक्षा आयोगों और नीति में शिक्षा कर्मियों के आलोचनात्मक होने की राह मुश्किल हो जाती है।

समेकन

पाठ्यपुस्तकों से लिए गये छह उदाहरणों पर टीचर-एजुकेटर्स के साथ हुए अनुभव के आधार पर शिक्षक और शिक्षिकाओं के आलोचनात्मक होने के संदर्भ में कुछ ऐसे सूत्रों को रेखांकित किया जा सकता है, जिन पर कुछ और गंभीरता के साथ विचार करने की आवश्कता है।

हालाँकि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के साथ ही स्कूली शिक्षा के बारे में रही सकारात्मक सोच को कुछ और बल मिला। इस पाठ्यचर्या की वजह से एक परिवर्तन यह आया कि सैद्धांतिक रूप में पाठ्यपुस्तकों को ज्ञान का अंतिम स्रोत मानने का चलन कुछ काम हुआ। इस पाठ्यचर्या के साथ ही इस विचार को मान्यता मिलने लगी कि पाठ्यपुस्तकें सरोकारों को उठाने का जरिया हैं न कि सरोकारों पर अंतिम फैसला देने वाली एजेंसी। लेकिन इस पर्चे में दिये गये उदाहरण-1 के हवाले से यह तथ्य सामने आता है कि आलोचनात्मक चिंतन को प्रेरित करने वाली पाठ्यपुस्तकों की रचना करने की दिशा में अभी काफी कुछ किया जाना बाकि है। उदाहरण-1 शिक्षा में मौजूद व्यवहारवादी उपागम का एक नमूना है। सैद्धांतिक रूप से हम भले ही यह मन चुके हैं

कि व्यवहारवादी उपागम, बेहतर शिक्षा के लिए उपयुक्त नहीं है। लेकिन इसकी मजबूत गिरफ्त से मुक्त होने के लिए अभी अनेक प्रयास करने की जरूरत है।

टीचर-एजुकेटर्स के साथ हुए अनुभव से एक यह बात समझ में आयी कि गैर-लोकतांत्रिक सामाजीकरण और उस सामाजीकरण के आधार पर बने व्यवहार, शिक्षक और शिक्षिकाओं के आलोचनात्मक बनने की राह में बड़ी बाधाएँ हैं। ऐतिहासिक प्रभुत्व और वर्चस्व जब बिना चुनौती पाए जब आगे बढ़ते रहते हैं, तब वैसी स्थितियाँ पैदा होती हैं जैसी इस पर्चे में वर्णित प्रशिक्षण कार्यक्रम में हुईं। यानि बड़ी स्पष्टता के साथ सामने खड़ी असमतामूलक स्थिति की पहचान करने में भी हमें मुश्किल पेश आती हैं। इसके लिए जरूरी है कि समाज में फैले विभिन्न विरोधाभासों को भी सीखने-सिखाने का जरिया बनाया जाए। जैसा कि इस पर्चे में वर्णित प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा उदाहरण-1 में किया गया।

संदर्भः

नेशनल पॉलिसी ऑन एजुकेशन-1986. डिपार्टमेंट ऑफ एजुकेशन. मिनिस्ट्री ऑफ ह्यूमन रिर्सोस डवलपमेंट. नई दिल्ली

रिपोर्ट आफ द नेशनल कमीशन ऑन टीचर्स 1983-85. पार्ट-1

रिपोर्ट आफ द नेशनल कमीशन ऑन टीचर्स 1983-85. पार्ट-2

नेशनल करिकुलुम फ्रेमवर्क फार टीचर्स एजुकेशन (2009)। नेशनल काउंसिल फार टीचर्स एजुकेशन. नई दिल्ली।

इकोनोमिक्स (2007) टैक्स्टबुक फार क्लास 9, नेशनल काउंसिल आफ एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग, नई दिल्ली

रिपोर्ट आफ द एजुकेशन कमीशन 1964-66 (1970), पार्ट-1, नेशनल काउंसिल आफ एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग, नई दिल्ली

शिक्षक-शिक्षा. राष्ट्रीय फोकस समूह का आधारपत्र, 2009. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद. नयी दिल्ली.

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग 1964-66 (1970). राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद. नयी दिल्ली.

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप-2005. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद. नयी दिल्ली.

पाठक, रवीन्द्र कुमार (2010). स्त्री-विमर्श की दृष्टि में हिंदी व्याकरण की सृष्टि. हिंदी व्याकरण के नवीन क्षितिज में भारतीय ज्ञानपीठ. नई दिल्ली।

फ्रेरे, पाउलो (2010). उम्मीदों का शिक्षाशास्त्र ग्रंथ-शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड. नई दिल्ली।

भारतीय भाषाओं का शिक्षण (2009). आधार पत्र. एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली।

भाषा, संज्ञान, और समाज (2014). राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान ;प्म्त्ज्द्ध, उदयपुर, राजस्थान.

बर्नस्टीन, बेसिल (1985). ऑन द फ्रेमिंग एंड क्लासिफिकेशन ऑफ एजुकेशनल नालेज. सोशिओलोजिकल परस्पेक्टिवस इन एजुकेशन में सुरेश चंद्र शुक्ला एवं कृष्ण कुमार (सं.), चाणक्य प्रकाशन, दिल्ली,

साथी हाथ बढ़ाना (2006). वसंत, भाग–1. कक्षा 6 के लिए हिंदी की पाठ्यपुस्तक में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्.

जो देखकर भी नहीं देखते (2006). वसंत, भाग–1. कक्षा 6 के लिए हिंदी की पाठ्यपुस्तक में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्.

संस्कृति तथा समाजीकरण (2009). समाजशास्त्र परिचय, कक्षा 11 की पाठ्यपुस्तक में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

रहीम के दोहे (2013–14). किसलय, भाग–1 में कक्षा 6 के लिए हिन्दी की पाठ्यपुस्तक बिहार स्टेट टेक्स्टबुक पब्लिशिंग कॉरपोरेशन लिमिटेड.पटना.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 23, अंक 1, अप्रैल 2016

शिक्षकों के आत्मविश्वास पर चेतना विकास मूल्य शिक्षा का प्रभाव

राधेश्याम बघेल* एवं **शोभा पुरकर****

शिक्षा परिवर्तन का सर्वोत्तम साधन है। शिक्षा का सरलतम अर्थ ''सही समझना'' ही है और यह सही समझ स्वयं से लेकर संपूर्ण अस्तित्व की व्यवस्था को समझना होता है अर्थात शिक्षा से आशय स्वयं को समझना एवं अस्तित्व को समझना है। स्वयं की समझ व अस्तित्व की समझ से ही सही मायने में मानवीयता पूर्ण आचरण की समझ का विकास होता है और यह समझ की प्रक्रिया मानव में, मानव से, मानव के लिये ही संभव है। यही मानव चेतना का विकास है।

छत्तीसगढ़ शासन शिक्षा विभाग ने नवम्बर 2007 से मध्यस्थ दर्शन पर आधारित चेतना विकास मूल्य शिक्षा (जीवन विद्या) मे माध्यम से सर्वप्रथम स्कूल शिक्षकों को इस दिशा में संकल्पित करने और निष्ठा भाव से मानव के लिए जीवनोपयोगी शिक्षा प्रदान करने की पहल की। शिक्षा के स्वरूप को लोकहितकारी बनाने के साथ ही साथ इसे व्यक्ति (शिक्षकों एवं विद्यार्थियों) के सर्वांगीण विकास से जोड़ा गया जिसमें मात्र शरीर–पोषण तक सीमित, भौतिकवादी व्यवस्था में बंधी शिक्षा के स्थान पर जीवन पोषण, आत्मप्राण पर आधारित मानवतावादी शिक्षा पर बल दिया गया है।

मध्यस्थ दर्शन एक ऐसी विचारधारा हे जो विश्व की प्रमुख विचारधाराओं, भौतिकवादी ओर आध्यात्मवादी के मध्य का मार्ग प्रस्तुत करते हुए तन, मन, धन से समझदारी पूर्वक और सदुपयोगी जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त करती है। मध्यस्थ दर्शन प्रकृति में व्यक्ति की खुशी और सबकी तृप्ति के साथ सहअस्तित्व की प्रधानता को स्वीकारता है, जिससे

---

*शोधार्थी, राधेश्याम बघेल, सेवा निवृत्त सहायक प्राध्यापक, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधार एवं प्रशिक्षण परिषद, शंकर नगर, रायपुर (छत्तीसगढ़)
**निर्देशिका, डॉ. (श्रीमती) शोभा पुरकर, विभागाध्यक्ष, (शिक्षा संकाय) कल्याण स्नात्तकोत्तर महाविद्यालय, भिलाईनगर (छत्तीसगढ़)

'जीने दो और जियो' एक मूल मंत्र बन जाता है। मध्यस्थ दर्शन (सह अस्तित्ववाद) वर्तमान में विश्व समुदाय के समक्ष एक ऐसा अभिकल्प (मॉडल) प्रस्तुत करता है जिसमें निरन्तर सुख प्रत्येक को अपलब्ध होगा, व्यक्ति शिक्षित और संस्कारित होगा। शिक्षा का मूल्य भी यही है।

चेतना विकास मूल्य शिक्षा वास्तव में मानवीय शिक्षा का निश्चयीकरण है। शिक्षा का आशय सही समझ पैदाकर पाने वाला प्रशिक्षण, शिक्षण एवं अध्ययन की संयुक्त प्रक्रिया है जिसके माध्यम से शिष्ट मूल्यों का उदय हो सके। शिक्षा का मानवीयकरण के सर्वोत्तम साधन शिक्षक व अभिभावक हैं।

चेतनाधारी शिक्षक प्रथमत: मानव ही है। प्रत्येक मानव की यह आंतरिक प्रेरणा व कामना होती है कि वह सर्वसुख प्राप्त करे और उसी को वह अपने जीवन की लक्ष्यपूर्ति भी समझता है। इसी लक्ष्यपूर्ति के लिए शिक्षा अनिवार्य है जो न केवल भौतिक वातावरण की आवश्यकता एवं मांग है, बल्कि सामाजिक वातावरण के साथ समायोजन करने के लिए आवश्यक है।

शिक्षा एक ऐसी शक्ति है जो मानव को मानव बनाने में सहायक सिद्ध होती है और यह विद्यार्थियों पर अपना प्रभाव किसी न किसी मूल्य के रूप में डालती है। विद्यार्थियों को जिस प्रकार की शिक्षा परिवार, विद्यालय और समाज से प्राप्त होती है उसी के अनुरूप मूल्य विकसित हो जाते हैं।

शिक्षा का धारक वाहक शिक्षक अपने विद्यार्थियों के शिक्षण प्रक्रिया का मजबूत आधारशिला होता है। बालकों में निहित शिक्षा को उद्घाटित करने व उसे विकसित करने में अन्य और भी आधार होते हैं लेकिन शिक्षक विद्यार्थी की शैक्षिक अभिलाषा एवं उसके प्रति उनके लगाव तथा समर्पण को पहचान कर, अपनी योग्यता व क्षमता के बलबूते, जिम्मेदारी के साथ, सार्थक शिक्षा की पहचान प्रदान करता है। इसलिए समाज में शिक्षक का एक विशिष्ट स्थान होता है। उसे निरन्तर बनाये रखना होता है।

शिक्षक का तगमा धारण कर लेने से ही वे आत्मविश्वासी व प्रभावशाली नहीं बन जाते। शिक्षक बहुत सारी भूमिकाओं को एक साथ वहन करते हैं। वह अभिभावक, नेतृत्वकर्ता, पथ निर्देशक, परामर्शदाता, मित्र जैसे सहयोगी, निष्पक्ष व निर्णायक समालोचक आदि की भूमिकायें अपने विद्यार्थी व समाज के लिए करता है।

शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। अत: सच्चा शिक्षक वही है जो जीवनभर सीखने के लिए लालायित रहता है। उसे विद्यार्थी बने रहने में आनंद आता है। गुरुवर

रविंद्रनाथ टैगोर का मंतव्य द्रष्टव्य है: ''शिक्षक तब तक सच्ची शिक्षा नहीं दे सकता, जब तक कि वह स्वयं न सीख रहा हो। एक दीपक दूसरे दीपक को तब तक नहीं जला सकता, तब तक वह स्वयं न जल रहा हो।''

जहाँ शिक्षा की कसौटी, ''तमसो मा ज्योतिर्गमय'' वहाँ शिक्षक की कसौटी है निरंतर आलोक दीप बने रहना, जो कि तब तक संभव नहीं है जब तक कि शिक्षक स्वयं ज्ञान कणों का संग्रह न करता हो। राधाकृष्णन कमीशन (1948) ने कहा है ''यह विलक्षण बात है कि हमारे विद्यालयों के शिक्षक 24 या 25 वर्ष की आयु तक पहुँचने से पहले ही उन विषयों के संबंध में सब कुछ सीख लेते हैं जो उनको पढ़ाने होते हैं और उसके पश्चात् उनकी सब भावी शिक्षा अनुभव पर छोड़ दी जाती है। शिक्षा चूँकि परिवर्तन का सशक्त माध्यम के रूप में मान्य है है, अत: शिक्षकों में नयी, सही वह उपयोगी शैक्षिक रुचि व रूझान उत्पन्न करने की क्षमता रखने वाली परिवर्तनकारी वैकल्पिक शिक्षा की वर्तमान आवश्यकता है।

शिक्षा देने जैसे महत्वपूर्ण रोजगार में प्रवृत्त शिक्षक प्राय: धन, पद एवं नौकरीगत प्रतिस्पर्द्धा में ही रमे रहते हैं। प्रकृति और समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी एवं भूमिका के प्रति उदासीन रहते हैं।

मध्यस्थ दर्शन पर आधारित मानव चेतना विकासोन्मुख मूल्य शिक्षा उन्हें जीने के प्रत्येक स्तर जैसे परिवार, समाज एवं प्रकृति में वर्तमान अंतर्सम्बन्धों से अत्यंत तार्किक, प्रयोगधर्मी व स्वमूल्यांकन आधारित तरीके से कराती है। इससे शिक्षकों में मानव चेतना का विकास होता है एवं मानव चेतना विकसित शिक्षक परिवार, समाज एवं प्रकृति से अपने सरोकार को समझ कर अपने विद्यार्थी अपने परिवार के लोगों के साथ उभयतृप्ति एवं उभयसमृद्धि हेतु कार्य व्यवहार कर पाता है। मानव चेतना जागृति के पूर्व ऐसा संभव नहीं है। इसलिए आज महती आवश्यकता शिक्षा को मानव चेतना विकास से सीधे जोड़ने की है।

चेतना विकास मूल्य शिक्षा पर शोध अध्ययन की स्थिति न्यूनतम है। इस पर हुये पूर्व कार्य के अन्तर्गत श्रीवास्तव, (2010) ने ''शिक्षा के एकांगी स्वरूप के संवाहक छात्राध्यापकों एवं शिक्षक-प्रशिक्षकों पर मानवीय मूल्यों की शिक्षा- ''मध्यस्थ दर्शन'' के प्रभाव का अध्ययन'' किया गया है जिसमें सूचना शिविर में सम्मिलित होने वाले शिक्षकों, छात्राध्यापकों, शिक्षक प्रशिक्षकों के दृष्टिकोण एवं कार्यशैली के साथ ही

जीवन संबंधी आवश्यकताओं (प्राथमिकताओं) को तय करने में उपयोगी पाया है। आवश्यकता आधारित समृद्धियुक्त जीवन शैली की ओर शिक्षकों में सकारात्मक परिवर्तन पाया गया है एवं बघेल एवं साहू, (2011–12) ने अपने पायलट स्टडी में शिक्षकों एवं डी.एड. छात्राध्यापकों पर चेतना विकास मूल्य शिक्षा शिविर के प्रभाव का समीक्षात्मक अध्ययन किया एवं इन्होंने मूल्यों के प्रति सकारात्मकता को पाया। अध्ययन में शिक्षकों एवं छात्राध्यापकों में चेतना विकास मूल्य शिक्षा की प्रभाविकता को जानने हेतु 08 आयामों – शैक्षिक वातावरण शैक्षिक अभिरुचि, सार्थक अंतर्संबंध, स्वयं में विश्वास (कक्षा में अभिव्यक्ति के प्रति), रुचिकर एवं प्रभावी अध्ययन, विचार, व्यवहार एवं अनुभव का स्वनिर्मित प्रश्नावली के माध्यम से अध्ययन किया एवं शिक्षकों में स्वयं में विश्वास एवं छात्राध्यापकों में व्यवहार पक्ष को छोड़कर प्रत्येक के 7 आयामों में सकारात्मक पायी गयी, का उल्लेख प्रासंगिक है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में सोद्देश्य न्यादर्श का चयन किया गया है क्योंकि चेतना विकास मूल्य शिक्षा (जीवन विद्या) की अवधारणा को छत्तीसगढ़ के शासकीय शिक्षकों को शिविरों के माध्यम से दिया गया है। मानवीय शिक्षा शोध संस्थान (अभ्युदय संस्थान) अछोटी, जिला–दुर्ग, छत्तीसगढ़ में जीवन विद्या (चेतना विकास मूल्य शिक्षा) शिविर केन्द्र है। ये शिविर सात दिवसीय परिचय शिविर एवं एक वर्षीय अध्ययन शिविर के नाम से संचालित हो रहा है। इन शिविरों में इस शिक्षा की अवधारणात्मक विमर्श के प्रतिभागी शासकीय शिक्षकों पर पढ़ने वाले प्रभाव का अध्ययन शोधकर्त्ता का विषय है। इसलिए इन शिविरों में प्रशिक्षित शिक्षकों एवं इस अवधारणा से बिलकुल ही अपरिचित शासकीय शिक्षकों में से ही सोद्देश्य तथा सुविधानुसार शिक्षकों को शोध कार्य में लिया गया है।

चेतना विकास मूल्य शिक्षा प्रशिक्षित शिक्षक– इससे आशय छत्तीसगढ़ शासन स्कूल शिक्षा विभाग के शासकीय शालाओं के उन शिक्षकों से है जिन्होंने मानवीय शिक्षा शोध संस्थान (अभ्युदय संस्थान) अछोटी, जिला–दुर्ग (छत्तीसगढ़) के द्वारा शासन के समन्वय के साथ संचालित शिविरों (परिचय एवं अध्ययन शिविर) के माध्यम से चेतना विकास मूल्य शिक्षा (जीवन विद्या) से परिचित हुए हैं।

चेतना विकास मूल्य शिक्षा अप्रशिक्षित शिक्षक– इससे आशय छत्तीसगढ़ शासन स्कूल शिक्षा विभाग के शासकीय शालाओं के उन शिक्षकों से है जिन्होंने उक्त शिविरों में

न ही सम्मिलित हुए हैं और न ही चेतना विकास मूल्य शिक्षा (जीवन विद्या) से किसी भी प्रकार से परिचित हैं।

छत्तीसगढ़ के 27 जिलों में से 20 जिलों के विभिन्न शिविरों से चेतना विकास मूल्य शिक्षा प्रशिक्षित शिक्षकों में से 150 शिक्षक एवं इन्हीं जिलों के ही 150 अप्रशिक्षित शिक्षकों का चयन किया गया है।

प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों को उनके सामान्य जानकारी के आधार पर निम्नांकित तालिका में दर्ज किया गया है।

तालिका

सामान्य जानकारी आधारित शिक्षकों की संख्या

क्र. सं.	**प्रशासित शिक्षक संबंधी सामान्य जानकारी**	**सामान्य जानकारी आधारित निर्मित विभिन्न**	**उपलब्ध न्यादर्श**	
			प्रशिक्षित (150) में से	**अप्रशिक्षित (150) में से**
1	2	3	4	5
1.	लिंगवार	पुरुष	130	5
		महिला	20	115
2.	आयुवार	35 वर्ष से कम	61	74
		40 वर्ष से अधिक	89	76
3.	जातिवार	सामान्य	27	28
		अ.पि.वर्ग	87	70
		अनु. जाति+अनु. जनजाति	36	52
4.	शालेयस्तर	प्राथमिक शाला	52	69
		माध्यमिक शाला	63	57
		उच्चतर माध्यमिक शाला	35	24
5.	शैक्षिक अनुभव	10 वर्ष से कम	65	82
		15 वर्ष से अधिक	85	68
6.	शैक्षणिक योग्यता	स्नातक स्तर तक	34	59
		स्नातकोत्तर स्तर तक	116	91

उपरोक्त तालिका में प्रशासित शासकीय शिक्षकों, जिनकी संख्या प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित

क्रमश: 150+150 = 300 है, का सुविधानुसार चयनित 20 जिलों में विभिन्न सामान्य जानकारी आधारित बने समूह, क्रमवार न्यादर्श है। न्यादर्श चयन सोद्देश्य है।

इस क्षेत्र में छत्तीसगढ़ राज्य शासन द्वारा क्षीण गति से संचालित किये जा रहे प्रयासों, प्रयोगों एवं शोधार्थी के स्वयं के अनुभवों के आधार पर शिक्षा के मानवीकरण की अनिवार्यता को महसूस करते हुए शिक्षकों के प्रशिक्षण कार्यक्रम का उनके आत्मविश्वास पर पड़ने वाले प्रभाव का समीक्षात्मक अध्ययन इसका मुख्य प्रयोजन है।

जरशील्ड (1978) के शब्दों में आत्मविश्वास से आशय है कि ''यह व्यक्ति के अपने विचारों, भावनाओं, आशाओं, भय, कल्पनाओं तथा अपने मूल्यों के संबंध में उसकी अभिवृत्तियों की ही एक समष्टि है।'' अर्थात् प्रत्येक स्थिति की व्यक्ति की मांग होती है और इन मांगों को पूरी करने की क्षमताएं उनके आत्मविश्वास में दिखाई पड़ता है।

शिक्षकों के आत्मविश्वास के मापन के लिए गुप्ता, आर. (2005) द्वारा निर्मित Agnihotri's Self – Confidence Inventory (ASCI) प्रमापीकृत परीक्षण का उपयोग किया गया है। इसमें 56 कथन हैं। मापनी द्वारा प्रशासित शिक्षक संबंधी सामान्य जानकारी के साथ उनके प्राप्तांक लिये गये हैं। सभी शिक्षक शासकीय विद्यालयों से हैं जिनकी कुल संख्या 300 है जिनमें 150 प्रशिक्षित एवं 150 अप्रशिक्षित हैं। मापनी की विश्वसनीयता 0.88 है। मापनी के प्रमाणीकृत निर्माण प्रक्रिया में प्रारंभ में 2074 (पुरुष N=748 एवं महिला N=1326) शिक्षा क्षेत्र के व्यक्तियों का आकलन किया गया, जिसका 116 न्यादर्शों पर परीक्षण पुन: परीक्षण कर इसे वैध एवं विश्वसनीय स्वरूप दिया गया।

- **अध्ययन का उद्देश्य**

1. शालेय शिक्षकों के आत्मविश्वास पर चेतना विकास मूल्य शिक्षा के प्रभाव का अध्ययन करना।
2. शालेय शिक्षकों के लिंग, आयु, जाति, शालेय स्तर, शैक्षिक अनुभव एवं शैक्षणिक योग्यता के आधार पर शिक्षकों के आत्मविश्वास पर चेतना विकास मूल्य शिक्षा के प्रभाव का अध्ययन करना।

प्रस्तुत अध्ययन के आत्मविश्वास से तात्पर्य अग्निहोत्री द्वारा निर्मित आत्म विश्वास मापनी (ASCI) पर प्राप्त कुल प्राप्तांकों से है।

अध्ययन के उद्देश्य को ध्यान मे रखते हुये निम्नलिखित परिकल्पनाएँ की गईं:

परिकल्पनाएँ

शिक्षकों के आत्मविश्वास पर लिंग, आयु, जाति, शालेयस्तर, शैक्षिक अनुभव, शैक्षणिक योग्यता में चेतना विकास मूल्य शिक्षा के प्रशिक्षण का प्रभाव नहीं पड़ता है।

लिंग के आधार पर

पुरुष शिक्षकों के आत्मविश्वास पर चेतना विकास मूल्य शिक्षा के प्रशिक्षण का प्रभाव नहीं पड़ता है।

महिला शिक्षिकाओं के आत्मविश्वास पर चेतना विकास मूल्य शिक्षा के प्रशिक्षण का प्रभाव नहीं पड़ता है।

आयु के आधार पर

35 वर्ष से कम आयु के शिक्षकों के आत्मविश्वास पर चेतना विकास मूल्य शिक्षा के प्रशिक्षण का प्रभाव नहीं पड़ता है।

40 वर्ष से अधिक आयु के शिक्षकों के आत्मविश्वास पर चेतना विकास मूल्य शिक्षा के प्रशिक्षण का प्रभाव नहीं पड़ता है।

जाति के आधार पर

सामान्य जाति के शिक्षकों के आत्मविश्वास पर चेतना विकास मूल्य शिक्षा के प्रशिक्षण का प्रभाव नहीं पड़ता है।

अन्य पिछड़ी जाति के शिक्षकों के आत्मविश्वास पर चेतना विकास मूल्य शिक्षा के प्रशिक्षण का प्रभाव नहीं पड़ता है।

अनुसूचित जाति एवं जनजाति के शिक्षकों के आत्मविश्वास पर चेतना विकास मूल्य शिक्षा के प्रशिक्षण का प्रभाव नहीं पड़ता है।

शालेय स्तर के आधार पर

प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के आत्मविश्वास पर चेतना विकास मूल्य शिक्षा के प्रशिक्षण का प्रभाव नहीं पड़ता है।

माध्यमिक स्तर के शिक्षकों के आत्मविश्वास पर चेतना विकास मूल्य शिक्षा के प्रशिक्षण का प्रभाव नहीं पड़ता है।

उच्चत्तर माध्यमिक स्तर के शिक्षकों के आत्मविश्वास पर चेतना विकास मूल्य शिक्षा के प्रशिक्षण का प्रभाव नहीं पड़ता है।

शैक्षिक अनुभव के आधार पर

10 वर्ष से कम शैक्षिक अनुभव रखने वाले शिक्षकों के आत्मविश्वास पर चेतना विकास मूल्य शिक्षा के प्रशिक्षण का प्रभाव नहीं पड़ता है।

15 वर्ष से अधिक शैक्षिक अनुभव रखने वाले शिक्षकों के आत्मविश्वास पर चेतना विकास मूल्य शिक्षा के प्रशिक्षण का प्रभाव नहीं पड़ता है।

शैक्षणिक योग्यता के आधार पर

स्नातक स्तर शिक्षित शिक्षकों के आत्मविश्वास पर चेतना विकास मूल्य शिक्षा के प्रशिक्षण का प्रभाव नहीं पड़ता है।

स्नातकोत्तर स्तर शिक्षित शिक्षकों के आत्मविश्वास पर चेतना विकास मूल्य शिक्षा के प्रशिक्षण का प्रभाव नहीं पड़ता है।

प्रशिक्षित शिक्षकों के आत्मविश्वास पर चेतना विकास मूल्य शिक्षा के प्रशिक्षण का सार्थक प्रभाव पाया गया। शिक्षकों के लिंग, आयु, जाति, शालास्तर, शैक्षिक अनुभव व शैक्षणिक योग्यता के आधार पर इनमें प्रशिक्षण का सार्थक प्रभाव सभी समूहों में दिखता है। लिंग के आधार पर पुरुष शिक्षकों में प्रशिक्षण का सार्थक प्रभाव पाया गया। महिला शिक्षकों में 0.05 स्तर पर प्रभाव सामान्य एवं अन्य पिछड़ी जाति के शिक्षकों में सार्थक प्रभाव देखने को मिला। अनुसूचित जाति एवं जनजाति के शिक्षकों में 0.05 स्तर पर प्रभाव में सार्थकता पायी गयी।

शैक्षिक उपादेयता

यह अकाट्य तथ्य है कि संपूर्ण मानव जाति में कोई भी मनुष्य दुखी होना नहीं चाहता, परंतु दुखी होता है। चाहने और होने की दूरी क्यों और कैसे कम हो, यह निहितार्थ शिक्षा में हो। मनुष्यों में निरंतर सुखी बने रहने की कामना सभी में विद्यमान है।

वास्तव में जीवन को निरंतर सुखपूर्वक जीने की कला में दक्ष बना देना ही शिक्षा का मुख्य ध्येय हो। शिक्षा वही है जो मनुष्यों को प्रत्येक परिस्थिति के लिए तैयार कर दे। वही व्यक्ति वास्तव में शिक्षित है जिसे हर वातावरण पर विजय प्राप्त करना आता है। यही शिक्षा की वास्तविक जीवन निधि है। यही शिक्षा मानव को दृढ़ चित्त और चरित्र देती है। इससे मानव किसी भी अवस्था में विचलित नहीं होता एवं अपनी आदतों पर नियंत्रण रखकर नए परिप्रेक्ष्यों में नूतन दृष्टि का प्रयोग कर सकने में सक्षम होता है।

प्रस्तुत अध्ययन के शैक्षिक महत्व का एक आधार यह भी है कि शिक्षा का अर्थ

शिक्षक आत्मविश्वास पर चेतना विकास मूल्य शिक्षा का प्रभाव

क्र. सं	शिक्षक विवरण		प्रशिक्षित	अप्रशिक्षित	प्रशिक्षित शिक्षक	अप्रशिक्षित शिक्षक	प्रशिक्षित शिक्षक	अप्रशिक्षित शिक्षक	"t" मान	निष्कर्ष
			N_1	N_2	M_1	M_2	SD_1	SD_2		
1.	कुल शिक्षक		150	150	13.9	20.887	9.269	10.849	5.982	सार्थक अंतर
2.	लिंग	पुरुष	130	115	13.808	20.087	8.944	11.220	4.848	सार्थक अंतर
		महिला	20	35	16.1	22.872	9.4	8.549	2.67	0.05 स्तर पर सार्थक अंतर
3.	आयु	35 वर्ष से कम	61	75	14.951	21.46	9.468	10.285	3.764	सार्थक अंतर
		40 वर्ष से अधिक	89	76	13.574	20.289	8.918	11.787	4.134	सार्थक अंतर
		सामान्य	27	28	11.704	25.858	7.276	12.566	4.996	सार्थक अंतर
4.	जाति	अन्य पिछड़ी	87	70	14.357	18.858	8.964	9.537	2.939	सार्थक अंतर
		अनु.जाति./ अनु.जन.जाति.	36	52	15.89	21.52	10.415	11.191	2.359	0.05 पर सार्थक अंतर
5.	शालेय स्तर	प्राथमिक	52	69	14.058	21.334	9.216	10.956	3.837	सार्थक अंतर
		माध्यमिक	63	57	13.874	19843	9.658	10.622	3.265	सार्थक अंतर
		उच्चतर माध्यमिक	35	24	12.714	20.958	8.378	10.305	3.316	सार्थक अंतर
6.	शैक्षिक अनुभव	10 वर्ष से कम	65	82	13.885	21.293	8.871	11.104	4.649	सार्थक अंतर
		15 वर्ष से अधिक	85	68	14.236	20.236	9.155	10.838	3.687	सार्थक अंतर
7.	शैक्षणिक योग्यता	स्नातक	34	59	14.25	20.119	9.8	10.218	2.678	सार्थक अंतर
		स्नातकोत्तर	116	91	13.609	21.176	9.054	11.468	5.306	सार्थक अंतर

केवल विद्यार्थियों को दिये जाने वाले ज्ञान से ही नहीं है बल्कि शिक्षा की प्रक्रिया जन्म से लेकर मृत्यु तक अबाध गति से चलती रहती है। मानव शिक्षा से हर पल कुछ न कुछ सीखता है और उसका कार्य-व्यवहार में उपयोग करता है। यह शिक्षा से ही संभव है।

अत: शिक्षा में उन मूल्यों का विकास हो जो स्वयं के लिए आवश्यक है, जिससे यही मूल्य हमें परिवार एवं समाज में सामंजस्यपूर्ण जीने में सक्षमता प्रदान करे। चूंकि विद्यालय सामाजिक मूल्यों के विकास का ऐसा माध्यम है जहां बालक कुछ न कुछ तो ग्रहण करता ही है। इसीलिए विद्यालयों को मानवीय व नैतिक मूल्यों का कार्य स्थल बनाना आवश्यक है। इसे शिक्षक ही संभव कर सकते हैं। चूंकि अध्ययन से चेतना विकास मूल्य शिक्षा प्रशिक्षण का सकारात्मक प्रभाव शिक्षकों के आत्मविश्वास व शिक्षक प्रभावशीलता पर प्रत्यक्ष रूप से दिखता है। फलत: इसका अनिवार्यत: प्रशिक्षण शिक्षकों हेतु उपयोगी है, क्योंकि जिसके पास जो रहता है, वह उसी को बांटता है– शिक्षक अपने आत्मविश्वास एवं प्रभाव की उपयोगिता को समझदारीपूर्वक अपने विद्यार्थियों में विस्तारित करेगा।

वर्तमान किंकर्त्तव्यविमूढ़ शिक्षकों के समक्ष अपने एवं अपने व्यवसाय के प्रति यह सुदृढ़ विश्वास उत्पन्न करता है जिससे वह गर्व के साथ परिवार व समाज में अपनी पहचान कायम करेगा।

अत: आज की महती आवश्यकता मूल्यों के प्रकाश में शिक्षा प्रदान करने की योग्यता लाने हेतु शिक्षकों में चेतना विकास मूल्य शिक्षा संबंधी उन्मुखीकरण प्रशिक्षण महत्वपूर्ण है। अत: अध्ययन के निष्कर्ष के परिपेक्ष्य में शालेय शिक्षा संबंधी निम्नांकित सुझाव विचारणीय व ग्राह्य स्वरूप में समीचीन हैं।

अध्ययन आधारित शिक्षकों हेतु सुझाव

1. शिक्षकों को चाहिये कि वे मानवीय मूल्यों की शिक्षा देने के लिए सर्वप्रथम अपने स्वयं के कार्य व्यवहार चरित्र में मानवीय मूल्यों का समावेश करें, तभी उनके द्वारा दी जा रही शिक्षा को छात्र ग्रहण कर सकेंगे।
2. शिक्षक हमेशा समझना-जीना-समझाना के प्रति सजग रहें जिससे जीने के धरातल पर वह विद्यार्थियों के लिए अनुकरणीय हो सके। मानवीय आचरण जीने में ही परिलक्षित होता है।
3. इसी भांति सीखना-करना-सिखाना के प्रति भी शिक्षक सदैव सतर्क रहें ताकि

विद्यार्थियों में करने का अभ्यास अर्थात श्रम करने की आदत व उसके प्रति सम्मान का भाव विकसित हो सके।

4. शिक्षकों को प्रत्येक संबंधों के पति निष्ठावान होना चाहिए क्योंकि जहां संबंधों के प्रति सही समझ के साथ निर्वाह होता है वहां संबंधों में निहित मूल्य स्वमेव स्वीकृत होते जाते हैं ताकि शिक्षकों की यह विशेषता बच्चों में अनुकरणीय आदत होने के कारण उनके लाभकारी हो सके।
5. शिक्षा विद्यार्थियों का बहुर्मुखी विकास कर सके इसकी पहल शिक्षकों को अपने स्तर पर आरंभ कर देनी चाहिये और तभी संभव है जब शिक्षक इस बात को अंतर्मन से स्वीकार करेंगे।

अभिभावकों हेतु सुझाव

1. प्रत्येक बच्चों में यह स्वाभाविक गुण है कि वह न्याय चाहता है, सत्य वक्ता होता है व हमेशा सही कार्य-व्यवहार करने का आकांक्षी होता है। उनके इस स्वाभाविक गुणों की प्रतिपूर्ति एवं संवर्धन के लिए समुचित वातावरण उपलब्ध कराना प्रत्येक अभिभावकों की जिम्मेदारी है जिसे उन्हें बखूबी निभाना चाहिए।
2. पालकों को विद्यार्थियों की गतिविधियों पर सतत् नजर रखनी चाहिए और उन पर यथोचित नियंत्रण भी रखना होगा, ताकि उनके जीवन में भटकाव पैदा न हो।
3. अभिभावक विद्यार्थियों की ऐसी दिनचर्या निर्मित करायें जिसमें प्रात: उठने से लेकर रात्रि विश्राम तक सदाचार, संयम, परिश्रम के साथ कार्य करते हुए वे भरपूर प्यार स्नेह और समुचित मार्ग दर्शन को प्राप्त कर सकें।

अध्ययन आधारित शिक्षकों हेतु सुझाव

1. विद्यार्थियों को नई-नई बातों को जानने के प्रति सदैव उत्सुक रहना चाहिए ताकि जो चीज जैसी है उसे वैसा ही जानकर स्वयं को निर्भय बना सके एवं अपना सर्वांगीण विकास कर सके।
2. विद्यार्थियों को सभी कालखण्डों में अनुशासित रहकर अध्ययन का कार्य पूर्ण करना एवं पाठ्येत्तर गतिविधियों में उत्साहित होकर अधिकाधिक भाग लेना होगा।
3. विद्यार्थियों को परिवार और शाला में क्रमश: अपने परिजनों एवं साथियों के साथ संपर्क एवं संबंध को मजबूत रखने की आदत डालनी चाहिए।

4. विद्यार्थियों का प्रत्येक क्रियाकलाप ऐसा हो कि वे स्वयं में विश्वास के साथ खड़ा हो सकें।

प्रशासनिक स्तर पर सुझाव

छत्तीसगढ़ शासन के द्वारा मध्यस्थ दर्शन के प्रचार-प्रसार के लिए समुचित मार्गदर्शन एवं सहयोग प्रदान किया जा रहा है। इसी संदर्भ में और अधिक सहयोग की आकांक्षा को लेकर निम्न सुझाव प्रस्तुत किये जा रहे हैं:

1. शासन स्तर पर चेतना विकास मूल्य शिक्षा के स्थायित्व एवं निरंतरता हेतु व्यवस्थित रणनीति बनाई जाए। इसकी शुरुआत जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान को केन्द्र बनाते हुए वहां अध्ययन शिविर से पारंगत शिक्षक की व्यवस्था की जा सकती है ताकि डी.एड. छात्राध्यापकों के साथ ही सेवाकालीन शिक्षकों को भी उनके लिए निरंतर आयोजित होने वाले प्रशिक्षणों में इसकी अवधारणा दी जा सके। साथ ही इसके सुव्यवस्थित संचालन हेतु पर्याप्त बजटीय प्रावधान भी रखा जाए।
2. स्कूली शिक्षा एवं मानवीय मूल्यों में परस्परता एवं पूरकता हेतु नियमित अंतराल में इसकी समीक्षा एवं मूल्यांकन होता रहे।
3. मूल्यपरक शिक्षा के लोकव्यापीकरण हेतु समुचित रणनीति बनाई जानी चाहिए।

प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर स्पष्टत: कहा जा सकता है कि चेतना विकास मूल्य शिक्षा शिक्षकों के आत्मविश्वास में धनात्मक प्रभाव पैदा करता है। यदि शिक्षक के सभी स्तरों पर चेतना विकास मूल्य शिक्षा के प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन किया जाये तो शिक्षकों के आत्मविश्वास में वृद्धि होगी जिससे शैक्षिक वातावरण, उनकी अभिरुचि, छात्रों के साथ अंतर्संबंधों, स्वयं की अभिव्यक्ति, एवं विचारों की सार्थकता में वृद्धि होगी। परिणामत: लाभ समाज को शिक्षा का वास्तविक मूल्य के रूप में मिलेगा।

संदर्भ

अप्रकाशित शोध प्रबंध 2015 पंडित रवि शंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर द्वारा श्री आर. एस. बघेल सेवानिवृत सहायक प्राध्यापक (शिक्षा) एस.सी.ई.आर.टी. रायपुर (छत्तीसगढ़)

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 23, अंक 1, अप्रैल 2016

माध्यमिक स्तर पर शिक्षार्थियों का संस्कृत शिक्षा के प्रति रुचियों, अभिवृत्तियों एवं संबद्ध कारकों का अध्ययन

राजेश प्रसाद सिंह*

सारांश

प्रस्तुत कार्य मूलत: संस्कृत-आयोग 1956-57 द्वारा अनुमोदित संस्कृत की आवश्यकताएँ, प्रयोजन एवं शिक्षण-विधियों के संदर्भ में की गई चर्चा से संबद्ध है। संस्कृत-आयोग 1956-57 ने स्वतंत्र भारत की आकांक्षाओं के परिप्रेक्ष्य में संस्कृत की आवश्यकताओं एवं इनकी पूर्ति हेतु शिक्षण-विधियों में परिवर्तन की ओर संकेत देते हुए वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में संस्कृत के परिदृश्य को अत्यन्त विस्तृत आयाम दिया है। इस आलेख का मूल उद्देश्य इस परिप्रेक्ष्य तथा संस्कृत की शिक्षा के प्रति रूचियों, अभिवृत्तियों एवं दृष्टिकोणों के संदर्भ में माधयमिक कक्षा तक प्रचलित संस्कृत-शिक्षण-विधियों की सीमाओं का विश्लेषण करना है। कार्य की मूल मान्यता है कि वर्तमान व्यवस्था में, विद्यालयी स्तर पर संस्कृत को एक 'तृतीय भाषा' के रूप में पढ़ाया जाता है तथा इसका रूप अन्य भाषाओं की भांति एक 'अन्य भाषा' के रूप में निर्धारित है, मानों, जिससे बच्चे प्राय: परिचित नहीं हैं। परन्तु स्थिति को भिन्न रूप में देखना होगा। विद्यार्थियों के लिए यह भाषा अपरिचित भाषा नहीं है। विद्यार्थी इस भाषा की संरचनागत विशिष्टताओं आदि से अपनी मातृभाषा के द्वारा परिचित हैं। यद्यपि संस्कृत-शिक्षण संबंधी विभिन्न पुस्तकों में संस्कृत-शिक्षण की अनेक विधियों की चर्चा की गई है, तथापि प्रचलन में केवल व्याकरण-अनुवाद विधि ही

*शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रचलित है। प्रचलित अवस्था में शिक्षण-सामग्री के रूप में पाठ्य सामग्री का साहित्यिक रूप अधिक है तथा इसका स्तर प्रायः विद्यार्थियों के स्तर के अनुकूल नहीं होता। पाठों की सामग्री व व्याकरण-शिक्षण में एक असम्बन्ध-सा बना रहता है। वर्तमान भाषा-विज्ञान के शोधों के आधार पर भाषा-शिक्षण को 'अधिगम' के स्थान पर 'भाषा-अर्जन' की परिस्थितियों के अनुकूल ढालना अधिक श्रेयस्कर होगा ताकि भाषा को अपने स्वाभाविक रूप में अर्जित किया जा सके। एवमेव भाषा-संप्राप्ति हेतु अधिकाधिक अभ्यासों से युक्त पाठ्य-सामग्री का निर्माण करना होगा। इसी प्रकार भारतीय संविधान एवं अन्य अनेक संदर्भों में संस्कृत की आवश्यकता को समझते हुए इसके प्रयोजन को केवल साहित्यिक पक्ष तक सीमित करने की अपेक्षा अन्य आधुनिक विषयों के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु भी विद्यार्थियों को तैयार करना होगा। अतः इसकी शिक्षण-विधियों को एक विस्तृत आयाम देते हुए इसे एक भाषा के रूप में समझने की आवश्यकता है। रा.शि.पा. 2005 में इसे एक आधुनिक प्रथम भाषा के रूप में देखते हुए इसके शिक्षण की चर्चा की गई है। अतः आवश्यक हो जाता है कि इसके शिक्षण के प्रतिमानों में मूलभूत परिवर्तन किया जाए।

प्रस्तावना

भारतीय विद्यालयी शिक्षा के अन्तर्गत भाषाओं एवं इनके शिक्षण का अपना एक विशिष्ट स्थान व प्रावधान है। बहुभाषी देश होने के नाते सामान्य रूप से यह माना जाता है कि एक विद्यार्थी को भी बहुभाषी होना चाहिए। अतः, एतदर्थ 'त्रिभाषा सूत्र' के अन्तर्गत प्रत्येक विद्यार्थी से तीन भाषाओं का अध्ययन अपेक्षित है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) में भी स्वीकार किया गया है कि –

आज हम निश्चित रूप से जानते हैं कि द्विभाषिकता या बहुभाषिकता से निश्चित संज्ञानात्मक लाभ होते हैं। अतः भाषाशिक्षण बहुभाषिक होना चाहिए।

इसी बिन्दु को ध्यान में रखते हुए शिक्षा-नीतियों में त्रि-भाषासूत्र को ही प्रायः स्वीकार किया गया है। जिसका स्पष्ट निहितार्थ यह है कि विद्यार्थी को मातृभाषा एवं प्रथम भाषा के अतिरिक्त दो अन्य भाषाएँ भी पढ़नी होती हैं। साथ ही, शिक्षण की दृष्टि से यह भी स्पष्टतः संकेतित होता है कि इन तीनों भाषाओं के शिक्षण की विधा में समानता नहीं होती। कारण स्पष्ट है कि मातृभाषा एवं क्षेत्रीय भाषा के औपचारिक शिक्षण से पूर्व

विद्यार्थी इन भाषाओं के परिवेश से परिचित होता है परन्तु अन्य दोनों भाषाओं के सीखने-सिखाने के संदर्भ में सामान्यत: यह सुविधा प्राप्त नहीं होती। इसी के साथ अन्य भाषा का अधिगम पूर्व प्राप्त अथवा पठित भाषा से निरन्तर बाधित होता रहता है।

वस्तुत: 'भाषा का अर्जन किया जाता है न कि पठन-पाठन' - इस उक्ति के संदर्भ से यही संकेत मिलता है कि भाषा-शिक्षण हेतु लक्ष्यभाषा के परिवेश का इस प्रकार निर्माण किया जाए कि भाषा स्वत: 'ग्रहण' होती चले। अर्थात् संस्कृत-शिक्षण के सन्दर्भ में, संस्कृत-शिक्षण हेतु संस्कृत का परिवेश बनाना 'संस्कृत-अधिगम' को सुगम बनाना है। इसे भाषा-ग्रहण की अर्थात् 'भाषा-अर्जन' की स्थिति से जोड़ना है।

भाषा-शिक्षण औपचारिक रूप से सुनियोजित एवं सोद्देश्य प्रक्रिया है जिसके माध्यम से विद्यार्थियों में भाषायी कुशलता का विकास किया जाता है। अत: भाषा शिक्षण का आशय शिक्षण की उस विशिष्ट व्यवस्था से माना जा सकता है जिसके द्वारा भाषाई कुशलता का विकास संभव है। कौशलों के शिक्षण में महत्व की दृष्टि से इनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है:

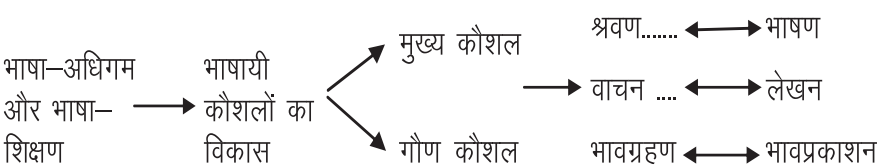

इस दृष्टि से माना जा सकता है कि भाषा शिक्षण का क्षेत्र प्राय: अनुप्रयोगात्मक है। भाषा की कल्पना कौशल प्रधान विषय के रूप में की जाती है।

यह स्वीकृत तथ्य है कि *अनुप्रयोगात्मक होने के कारण भाषा शिक्षण का क्षेत्र अनिवार्यत: उद्देश्यबाधित होता है। भाषा किसी न किसी विशेष उद्देश्य अथवा प्रयोजन के संदर्भ में सीखी और सिखाई जाती है*।

स्पष्ट ही है कि जब तक भाषा-शिक्षण के उद्देश्य अथवा प्रयोजन निर्धारित नहीं कर लिए जाते, उसकी सार्थकता एवं संप्राप्ति का मूल्यांकन भी नहीं हो पाएगा।

संस्कृत भाषा-शिक्षण को सामान्यत: अन्य भाषा-शिक्षण की परिधि में रखा जाता है और इस रूप में संस्कृत भाषा की प्रकृति व प्रणाली प्रयोक्ता की आवश्यकता, प्रयोजन एवं अभिप्रेरणा के कारण मातृभाषा-शिक्षण से भिन्न हो जाती है। अन्य भाषा-शिक्षण के

संदर्भ में भाषा के संरचनात्मक आधारों की भिन्नता के परिप्रेक्ष्य में इसकी अध्यापन-प्रविधि में भिन्नता अपेक्षित भी है।

ध्यातव्य है कि-

- भाषा-शिक्षण एक यांत्रिक प्रक्रिया नहीं है।
- भाषा-शिक्षण की पद्धतियों के ठोस दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक व भाषा वैज्ञानिक आधार हैं।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्त्व

'अन्य भाषा-शिक्षण' के सन्दर्भ में तो विशेष रूप से ध्यातव्य है कि कक्षा की अत्यन्त औपचारिक परिस्थितियों में भाषाशिक्षण की परिस्थिति 'शिक्षण-अर्जन' के स्थान पर 'अधिगम' से जुड़ी रहती है अर्थात् अधिगम के सिद्धांतों से इसका गहरा संबंध है। भाषा-शिक्षण के, विशेषत: 'संस्कृत-शिक्षण' के सन्दर्भ में यह एक अत्यंत औपचारिक रूप तक सिमट कर रह गई है। परिणामत: यह एक यांत्रिक प्रक्रिया बनकर रह गई, जिसके परिणामस्वरूप संस्कृत-शिक्षण के उद्देश्यों, संस्कृत भाषा की संरचनागत विशिष्टताओं तथा शिक्षण-प्रक्रिया के बीच संबंध बहुत स्पष्ट प्रतीत नहीं होता। वस्तुत: 'संस्कृत भाषा का शिक्षण' अन्य भाषाओं की तरह 'एक अन्य भाषा का शिक्षण' नहीं है। ***भारतीय परिस्थितियों में यह अध्येताओं के लिए पूर्णत: अपरिचित भाषा नहीं है अपितु वे किसी न किसी रूप में इससे परिचित रहते हैं।*** अत: आवश्यकता है कि 'संस्कृत' की इस स्थिति को समझा जाए। एतदर्थ ही प्रस्तुत कार्य का चयन किया गया है।

यह भी कि, विशेषत: माध्यमिक स्तर (कक्षा नवमी एवं दशमी) के स्तर पर शिक्षार्थियों का संस्कृत विषय के अध्ययन के प्रति क्या दृष्टिकोण है और वे इस विषय के प्रति कितनी रूचि रखते हैं। इसका विश्लेषण करके नवीन शिक्षण पद्धति के विकास में सहायता मिल सकती है।

समस्या-कथन

माध्यमिक स्तर पर शिक्षार्थियों का संस्कृत-शिक्षा के प्रति रुचियों, अभिवृत्तियों एवं संबद्ध कारकों का अध्ययन

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:

1. संस्कृत-शिक्षण के विभिन्न उद्देश्यों का विश्लेषण करना।
2. संस्कृत-शिक्षण में प्रयुक्त होनेवाली भाषा-शिक्षण की वर्तमान पद्धतियों का उद्देश्यपरक विश्लेषण करना।
3. माध्यमिक स्तर पर संस्कृत-अध्ययन के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
4. माध्यमिक स्तर पर संस्कृत-शिक्षा के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति एवं दृष्टिकोणों को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण करना।

परिकल्पना

भारतीय वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में संस्कृत एक प्राचीन, शास्त्रीय अथवा श्रेण्य 'अन्य भाषा' के रूप में पढ़ाई जाती है। इस दृष्टि से इसे आधुनिक शिक्षण-व्यवस्था में तृतीय भाषा के रूप में स्थान प्राप्त है। परन्तु यहाँ 'तृतीय भाषा' की मूल संकल्पना व 'संस्कृत' को तृतीय भाषा के रूप में पढ़ाने की संकल्पना में मौलिक भेद है। यह भेद कई स्तरों पर है:

- भारतीय परिस्थितियों में संस्कृत का स्थान, स्वरूप व महत्त्व।
- सांस्कृतिक परिवेश
- दैनिक जीवन में प्रयोगशीलता
- भाषिक संरचना एवं
- प्रयोजनात्मकता

  इन दृष्टिकोणों से भारतीय विद्यार्थियों के लिए अन्य भाषा अथवा तृतीय भाषा के रूप में **संस्कृत एक विदेशी भाषा नहीं है।**
- 1951 ई. की जनगणना पर आधारित 1957-58 में प्रकाशित भारतीय सांख्यिकी 'एब्सट्रेक्ट्स' के अनुसार भारत में 555 व्यक्तियों की 'मातृभाषा' संस्कृत थी। 1971 में यह संख्या बढकर 2,212 हो गयी। एक व्यक्तिगत सर्वेक्षण के अनुसार भारत और नेपाल में लगभग एक सौ परिवारों की मातृभाषा संस्कृत है। 1991 ई. की जनगणना के अनुसार 49,736 व्यक्तियों की मातृभाषा संस्कृत है।

- अनेक संस्थानों के प्रयासों से करोड़ों जन परस्पर व्यवहार में संस्कृत का प्रयोग करते हैं।
- साहित्य अकादमी की स्वीकृत आधुनिक भाषाओं की सूची में संस्कृत को भी स्थान प्राप्त है।
- संविधान ने आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शब्दावली के निर्माण हेतु संस्कृत को विशिष्ट उत्तरदायित्व सौंपा है। (संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुसार)
- आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास संस्कृत पर निर्भर है।
- संस्कृत में अनेक समाचार पत्रों, पत्रिकाओं का निरन्तर प्रकाशन होता है।
- 'दूरदर्शन' व 'आकाशवाणी' द्वारा संस्कृत में समाचार प्रसारित किए जाते हैं।
- असंख्य मात्रा में संस्कृत में वैज्ञानिक एवं साहित्यिक लेखन आदि का कार्य निरन्तर प्रवाहमय है।
- विश्व के प्राय: सभी विश्वविद्यालयों में संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन निरन्तर चलता है।
- भारत में संस्कृत के शिक्षणार्थ अनेक विश्वविद्यालय व अन्य योजनाएँ हैं।
- आधुनिक भाषाविज्ञान व इसकी शाखाओं को समझने, शोधकार्य व निदान निर्माण में संस्कृत की भूमिका अपरिहार्य है। इस संदर्भ में संस्कृत एक 'आधुनिक भाषा' का रूप ले रही है। अत: इसकी शिक्षण-विधियों में परिवर्तन की अपेक्षा है।
- शैक्षिक तकनीकी विकास के संदर्भ में भी संस्कृत-शिक्षण की विधियों में आमूल परिवर्तन की अपेक्षा की जा रही है, विशेषत: कम्प्यूटर के संदर्भ में।

शोध-प्रक्रिया

शोध की परिभाषा करते हुए जॉन डब्ल्यू बेस्ट लिखते हैं - *शोध अधिक औपचारिक, व्यवस्थित तथा गहन प्रक्रिया है जिसमें वैज्ञानिक विधि-विश्लेषण को प्रस्तुत किया जाता है जिसके फलस्वरूप निष्कर्ष निकाले जाते हैं और उनका औपचारिक आलेख तैयार किया जाता है।*

हिलवे के अनुसार *प्रयुक्त की जा रही विशिष्ट विधि का विस्तृत विवरण ज्ञात करने का अच्छा तरीका है कि यह जाना जाए कि चयनित विधि का ठीक तरह से प्रयोग किया जा रहा है और यह प्रभावी सिद्ध होगी। यदि छात्र अपनी विधि का विवरण नहीं दे सकता तो*

संभावना यह है कि वह बहुत संदिग्ध व साधारण है और उससे संतोषजनक परिणाम की आशा नहीं की जा सकती।

शोध की प्रक्रिया में शोध की विधियाँ अति महत्वपूर्ण होती हैं। शोध-प्रविधि किसी भी शोध का वह अभिन्न अंग होती है, जिसके द्वारा शोध अपने उद्देश्यों को प्राप्त करता है। विधि से अभिप्राय यह है कि आखिर किस तकनीक अथवा प्रक्रिया से शोध-कार्य को संपन्न किया गया। *शैक्षिक शोध का अंतिम लक्ष्य सिद्धांतों का प्रतिपादन करना, साथ ही शिक्षा के क्षेत्र में नवीन प्रक्रिया का विकास करना है*।

वस्तुत: यह शोध के स्वरूप पर निर्भर करता है कि उस शोध-विशेष के लिए कौन सी विधि अपनायी जाए।

विभिन्न प्रकार के शोधों के लिए भिन्न-भिन्न विधियों की आवश्यकता होती है। यदि किसी शोध की प्रकृति को जाने बिना उसके लिए उपयुक्त विधि का प्रयोग नहीं किया जाता तो उस शोध के उचित तथ्य व निष्कर्ष प्राप्ति की संभावना अपेक्षित रूप से पूर्ण नहीं होती तथा शोध स्वत: ही अपनी वैधता खो देता है। अत: शोध के महत्तम उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि पहले यह निर्धारित किया जाए कि आखिर शोध में प्रवृत्त होने के लिए कौन सी विधि युक्तिसंगत होगी।

शोध-विधियों के कई स्वरूप हैं, जैसे- ऐतिहासिक विधि, प्रयोगात्मक विधि, वर्णनात्मक विधि आदि। किसी शोध-समस्या के अध्ययन में उपयुक्त विधि का चयन और उसमें विशिष्ट अभिकल्प समस्या से जुड़े तथ्यों की प्रकृति पर निर्भर करते हैं। माना जाता है कि चयनित विधि वैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुरूप एवं वैध होनी चाहिए।

प्रस्तुत शोध मूलत: संस्कृत-शिक्षण में संस्कृत-शिक्षण के उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में प्रचलित विधियों के विवेचन व विश्लेषण से संबद्ध है। एतदर्थ समीक्षात्मक शैली को अपनाते हुए वर्णनात्मक प्रक्रिया को ही अपनाया गया है।

अत: उपर्युक्त बिन्दुओं के संदर्भ में विभिन्न प्रकार के 'मौलिक' एवं 'गौण' ग्रंथों का अध्ययन किया गया ताकि जाना जा सके कि अन्तत: भारतीय सन्दर्भों में भाषा-शिक्षण के लिए प्रयुक्त की जानेवाली पद्धतियों का ऐतिहासिक दृष्टि से विकास किस प्रकार हुआ तथा प्रयुक्त की जानेवाली विभिन्न पद्धतियों के मूल उद्देश्य क्या थे?

पुन: इन पद्धतियों का विद्यार्थियों की रूचियों, अभिवृत्तियों एवं अन्य संबद्ध कारकों के साथ क्या संबंध है? एतदर्थ मनोविज्ञान की विभिन्न धाराओं के विकास एवं

इससे प्रभावित भाषा के सन्दर्भ में शिक्षण-पद्धतियों की विशिष्टताओं की जानने व विश्लेषित करने का भी प्रयास किया गया।

एतद्पश्चात् जानने का प्रयास किया गया कि उपर्युक्त बिन्दुओं के सन्दर्भ में संस्कृत-शिक्षण किस प्रकार प्रभावित हुआ है? संस्कृत-शिक्षण में इन पद्धतियों का विकास किस प्रकार व किन उद्देश्यों से हुआ है? एतदर्थ भाषा-शिक्षण की विभिन्न पद्धतियों की विकासात्मक परस्पर-संबद्धता को परख कर इनके उद्देश्य व सामाजिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में इसका विश्लेषण किया गया।

चूंकि कोई भी शिक्षण-पद्धति मूलत: विषय-शिक्षण के उद्देश्यों, प्राप्त समय, अधिगमकर्त्ताओं की अधिगम संबंधी विशिष्टताओं आदि से जुड़ी होती है, अत: भाषा-शिक्षण की विभिन्न पद्धतियों को इस परिप्रेक्ष्य से जोड़कर उनका विश्लेषण किया गया। एतद्पश्चात् संस्कृत-शिक्षण के संदर्भ में संस्कृत की संरचनागत विशिष्टताओं तथा संस्कृत-शिक्षण के प्रयोजनों के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन कर इनका वर्णन किया गया तथा भाषा-शिक्षण के सैद्धांतिक आयामों में इनका विश्लेषण किया गया।

वर्तमान सन्दर्भों में संस्कृत-शिक्षण की पद्धतियों का विकास किस प्रकार हुआ तथा इस समय कक्षाओं में इसका व्यावहारिक रूप क्या है, इसके निरीक्षण हेतु निरीक्षण-सारणियों का मानक स्वरूप तैयार कर, कक्षाओं का निरीक्षण कर, संस्कृत की संरचनात्मकता तथा प्रयोजनों के संदर्भ में वर्गीकरण कर - इनका विश्लेषण किया गया। अन्तत: संस्कृत के स्वरूप एवं प्रयोजनों के संदर्भ में संस्कृत-शिक्षण की पद्धति के स्वरूप का निर्धारण किया गया।

शिक्षण अपने-आप में एक कौशलात्मक प्रक्रिया है। शैक्षिक तकनीकी के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को विभिन्न 'कौशलों के समूह' के रूप में देखा गया है। इस 'शिक्षण-प्रक्रिया' को विभिन्न कौशलों में खंडित कर 'सूक्ष्म-शिक्षण' की प्रक्रिया अपनाई जाती है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत शिक्षण संबंधी विभिन्न कौशलों का पुन: अभ्यास कराया जाता है एवं अन्त में सभी कौशलों को सम्मिलित कर इन्हें 'एकीकृत' रूप में प्रस्तुत किया जाता है। संक्षेप में इस प्रक्रिया को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

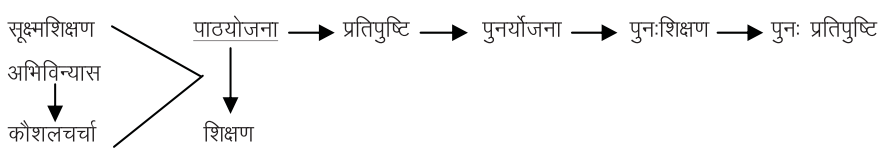

इन शिक्षण-कौशलों की संख्या भिन्न-भिन्न बताई गई है, तथापि निम्नलिखित कौशलों को शिक्षण के आधारभूत कौशलों के रूप में लिया जाता है

- प्रस्तावना
- व्याख्या
- प्रश्न पूछना
- प्रश्न वितरण
- श्यामपट्ट लेखन
- पुनर्बलन (शाब्दिक/अशाब्दिक)
- उदाहरण देना
- भाव-भंगिमा
- गति
- स्वर-आरोह-अवरोह
- विराम
- सहायक सामग्री का उपयोग
- पुनरावृत्ति।

उपरिलिखित सूची शिक्षण के सामान्य कौशलों से संबद्ध सूची है। भाषा-शिक्षण के सन्दर्भ में, विशेषत: संस्कृत-शिक्षण के संदर्भ में, भाषा के तत्त्वों के परिप्रेक्ष्य में देखते हुए निम्नलिखित तथ्य विशेषत: ध्यातव्य हैं:

- चार भाषाई कौशल
  - श्रवण
  - भाषण
  - पठन/वाचन
  - लेखन
- भाषिक तत्त्वों का संज्ञान, चयन एवं अनुप्रयोग
  यथा - संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, संख्यावाची शब्द
  - अन्विति : कर्ता-क्रिया, कर्म-क्रिया, विशेषण-विशेष्य, संज्ञा-सर्वनाम
  - उपसर्ग, प्रत्यय, अव्यय
  - वचन, लिङ्ग, विभक्ति
  - काल (लकार)
  - वाक्य, वाक्य-परिवर्तन आदि
- साहित्यिक पाठों के स्वरूप की दृष्टि से -
  - मौन एवं सस्वर वाचन
  - अर्थग्रहण
  - भावपूर्ण वाचन, गति, लय (विराम चिन्हों के परिप्रेक्ष्य में)

- रस, छन्द, अलंकार (कक्षा-स्तर की दृष्टि से)
- भावार्थ आदि।

इन बिन्दुओं के परिप्रेक्ष्य में यह भी द्रष्टव्य है कि कक्षा में 'अधिगम व अर्जन' को ध्यान में रखते हुए लक्ष्य भाषा का माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया जाना भी एक 'कौशल' है। इस संपूर्ण संदर्भ में लगभग 30 विद्यालयों में (सर्वकारीय एवं निजी) संस्कृत पाठों का निरीक्षण किया गया। निरीक्षण के आधारभूत तत्त्वों को निम्न प्रकार से अनुसूचियों के रूप में देखा जा सकता है:

(1) विन्यास-प्रेरणा कौशल

कौशल तत्त्व	**अनुस्थितियों का मूल्यांकन**						
	बिल्कुल नहीं			**सामान्य**		**अत्यधिक**	
	0	1	2	3	4	5	6
• छात्रों के पूर्व ज्ञान का उपयोग							
• युक्तियों/साधनों का समुचित प्रयोग							
• क्रम-भंग के अभाव के अवसर							
• अप्रासंगिक कथन							
• छात्रों ने प्रश्नों का सही उत्तर दिया							
• विन्यास प्रेरण प्रभावशाली रहा							

(2) खोजपूर्ण प्रश्न कौशल

कौशल तत्त्व	**अनुस्थितियों का मूल्यांकन**						
	बिल्कुल नहीं			**सामान्य**		**अत्यधिक**	
	0	1	2	3	4	5	6
• अनुबोधन का प्रयोग							
• अधिक सूचना के लिए प्रश्न							
• पुनर्केन्द्रण हेतु प्रश्न							
• समीक्षात्मक अभिज्ञता							

(3) व्याख्यान कौशल

कौशल तत्त्व	अनुस्थितियों का मूल्यांकन						
	बिल्कुल नहीं			सामान्य		अत्यधिक	
	0	1	2	3	4	5	6
• व्याख्यान का प्रभावी प्रारंभ							
• सरल एवं सुबोध भाषा							
• आवाज़ की स्पष्टता							
• बोलने में सहजता							
• रुचिकर युक्तियों का प्रयोग							
• पाठ की गति का औचित्य							
• शिक्षण बिन्दुओं को दोहराना							
• अस्पष्ट एवं असंबद्ध कथन							
• अन्त:क्रिया में परिवर्तन							
• व्याख्या समापन							

(4) परिचर्चा कौशल

कौशल तत्त्व	अनुस्थितियों का मूल्यांकन						
	बिल्कुल नहीं			सामान्य		अत्यधिक	
	0	1	2	3	4	5	6
• छात्रों ने सहभागिता को उपयुक्त ढंग से प्रोत्साहित किया							
• शिक्षक का शाब्दिक व्यवहार प्रोत्साहन पूर्ण था							
• अशाब्दिक शिक्षण-व्यवहार उपयुक्त था							
• छात्र-प्रतिक्रिया दीक्षा उपयुक्त थी							
• शाब्दिक व्यवहार उपयुक्त था							
• शिक्षक का अशाब्दिक व्यवहार उपयुक्त था							

(5) दृष्टान्त कौशल

कौशल तत्त्व	अनुस्थितियों का मूल्यांकन						
	बिल्कुल नहीं			सामान्य		अत्यधिक	
	0	1	2	3	4	5	6
• दृष्टान्त सुगम व सरल थे							
• दृष्टान्त प्रासंगिक थे							
• दृष्टान्त रोचक थे							
• दृष्टान्तों में आगमन/निगमन विधि प्रयुक्त थी							
• दृष्टान्तों की संख्या समुचित थी							
• छात्रों के उत्तरों से उनके बोध की जानकारी होती थी							

(6) पुनर्बलन कौशल

कौशल तत्त्व	अनुस्थितियों का मूल्यांकन						
	बिल्कुल नहीं			सामान्य		अत्यधिक	
	0	1	2	3	4	5	6
• विधेयात्मक शाब्दिक प्रबलन							
• पुनरावृत्ति एवं पुनर्व्याख्या							
• अतिरिक्त शाब्दिक संकेत							
• छात्रों के उत्तर श्यामपट्ट पर लिखना							
• प्रबलन का गलत उपयोग							
• प्रबलन का अनुपयुक्त उपयोग							
• नकारात्मक अशाब्दिक प्रबलन							

(7) उद्दीपन-परिवर्तन कौशल

कौशल तत्त्व	अनुस्थितियों का मूल्यांकन						
	बिल्कुल नहीं			सामान्य		अत्यधिक	
	0	1	2	3	4	5	6
• आंगिक संचालन							
• हाव-भाव							
• वाक्-संरूप परिवर्तन							
• केन्द्रण							
• अन्त:क्रिया शैली परिवर्तन							
• विराम							
• मौखिक-दृश्य बदलाव							

(8) श्यामपट्ट कार्य कौशल

कौशल तत्त्व	अनुस्थितियाँ	
	हाँ	नहीं
• पाठ आरंभ करने से पूर्व श्यामपट्ट को साफ किया		
• पाठोपरान्त श्यामपट्ट साफ किया		
• कक्षा में छात्रों और श्यामपट्ट के बीच अध्यापक व्यवधान नहीं बना		
• चॉक से लिखते समय चॉक घिसने की आवाज़ हुई		
• उचित दबाव डालकर चॉक से लिखा गया		
• श्यामपट्ट साफ करते समय धूल उड़ती थी		
• श्यामपट्ट लेख में वर्तनी की गलतियाँ थीं		
(टिप्पणी यदि हो तो)		

प्रस्तुत कार्य में भाषिक संकल्पनाओं के संज्ञान एवं व्यवहार के स्तर पर सरलता से समझने का प्रयास किया गया। सोदाहरण यह स्पष्ट करने का प्रयास भी किया गया कि किस प्रकार विविध सन्दर्भों में विभिन्न प्रकार के वाक्यों की रचना होती है। रचना के विभिन्न पक्षों की व्यवस्था से विद्यार्थियों में विभिन्न प्रयोग सन्दर्भों की दृष्टि से संप्रेषण एवं लेखन की क्षमता विकसित हो सके, ऐसी शिक्षण विधियों के विकास का प्रयास किया गया।

संबद्ध साहित्य के सर्वेक्षण के अन्तर्गत विभिन्न कार्यों के परिप्रेक्ष्य में भाषाओं तथा संस्कृत से जुड़े शोधों, मूल एवं गौण ग्रन्थों, आधुनिक साहित्य, विशेषत: भाषा-शिक्षण एवं संस्कृत-शिक्षण के ऐतिहासिक क्रम की अवधारणा के स्पष्टीकरण हेतु विषय के परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए विभिन्न आयोगों, समितियों, नीतियों के साथ संवैधानिक प्रावधानों का अध्ययन किया गया ताकि संस्कृत-शिक्षण के प्रयोजनों को भली-भांति समझा जा सके। मूलत: इस प्रक्रिया का उद्देश्य विषय के क्षेत्र, परिसीमन, उद्देश्य की स्पष्टता, विधि की वस्तुनिष्ठता की दृष्टि से किया गया। इन सबके साथ 'विश्लेषण की कसौटी' की ओर विशेष ध्यान देने का प्रयास किया गया।

परिसीमन

प्रस्तुत कार्य निम्नलिखित बिन्दुओं तक परिसीमित है:

- प्रस्तुत कार्य संस्कृत-शिक्षण की आधुनिक पद्धति के अन्तर्गत आधुनिक भारतीय शिक्षा पद्धति 10+2+3 प्रणाली के अंतर्गत माध्यमिक कक्षा तक परिसीमित है।
- संस्कृत-शिक्षण के उद्देश्यों के सन्दर्भ में केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड तथा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के उद्देश्यों को ही आधार बनाया गया है।
- एवमेव, संस्कृत-संरचना संबंधी विशिष्टताओं के सन्दर्भ में भी केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड एवं राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के द्वारा अनुमोदित माध्यमिक स्तर के (नवमी एवं दशमी) कक्षाओं के पाठ्यक्रम को ही आधार के रूप में लिया गया है।
- संस्कृत-शिक्षण के प्रयोजन के संदर्भ में आधुनिक शिक्षा संबंधी समितियों, आयोगों, शिक्षा-नीतियों एवं भारतीय संविधान में उल्लिखित संस्कृत एवं संस्कृति आदि संबंधी तत्त्वों को आधार बनाया गया है।

- संस्कृत-शिक्षण के प्रतिमानों के अभिप्राय को समकालीन संस्कृत-शिक्षण संबंधी सामान्यत: प्रचलित पुस्तकों में उल्लिखित विधियों तक ही परिसीमित किया गया है।
- कक्षाओं में संस्कृत-शिक्षण के व्यावहारिक रूप के निरीक्षण हेतु शोधकर्ता द्वारा निर्मित परीक्षण-पत्र में 'सूक्ष्म शिक्षण' प्रक्रिया के अन्तर्गत कक्षागत अंत:क्रिया को ही लिया गया है तथा कौशलों में से भी दैनिक उपयोग के प्रमुख कौशलों को ही चुना गया है।
- निरीक्षण-पत्र का मानकीकरण निदेशक एवं अन्य विशेषज्ञों के परामर्श पर तैयार किया गया है।
- प्रस्तुत कार्य हेतु किसी एक निश्चित पद्धति के चयन की अपेक्षा कार्य के स्वरूप को देखते हुए ऐतिहासिक, सर्वेक्षण एवं विश्लेषण पद्धतियों को ही सम्मिश्रित रूप से आधार बनाया गया है।
- प्रस्तुत कार्य के विश्लेषण हेतु गुणात्मक विश्लेषण को ही आधार बनाया गया है।
- निरीक्षण के लिए चयनित विद्यालयों में राजकीय एवं निजी- दोनों प्रकार के विद्यालयों को शामिल किया गया है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध के अंतर्गत संबद्ध कारकों के विश्लेषण से अधोलिखित निष्कर्ष निकले:

- भाषा-शिक्षण की विभिन्न विधियों की पूर्वमान्यताओं से अपरिचित होने के कारण बहुधा भाषा-शिक्षण (विशेषत: संस्कृत-शिक्षण) के प्रति समुचित व संतुलित दृष्टिकोण का अभाव।
- संस्कृत वाचन हेतु उपयुक्त वातावरण का अभाव।
- संस्कृत अध्यापकों में प्राय: अपेक्षित नवाचारी प्रयोगों, प्रभावक तत्वों, संस्कृत भाषा के प्रति अपेक्षित दृष्टिकोण एवं अभिवृति का अभाव।
- भाषायी संस्कृति के प्रति आस्था का अभाव।

अध्ययन के शैक्षिक निहितार्थ

भारतीय संदर्भों में संस्कृत का शिक्षण 10+2+3 शिक्षा-प्रणाली के अन्तर्गत यद्यपि एक तृतीय भाषा के रूप में किया जाता है, तथापि विद्यार्थियों के लिए यह पूर्णत: अपरिचित

भाषा नहीं है। भारतीय भाषाओं की आधारभाषा के रूप में विद्यार्थी प्राय: इसकी शब्दावली से परिचित हैं। एवमेव इसकी वाक्य संरचना के मूल क्रम से परिचित हैं। विद्यार्थी इसकी संस्कृति के ही अंगभूत हैं। अत: उनके लिए यह भाषा अन्य विदेशी भाषाओं की भांति 'अन्य भाषा' न होकर 'स्वभाषा' है। तथापि दैनिक जीवन में अन्य भाषाओं की भांति व्यवहृत न होने के कारण तथा सुव्यवस्थित-सुसंगठित व्याकरणात्मक नियमों से बद्ध होने के कारण इसके शिक्षण में अधिकाधिक अभ्यास की आवश्यकता है। यह अपेक्षा है कि कक्षा में इसको अधिकाधिक उपयोग करके एक ऐसे संस्कृतमय वातावरण का निर्माण किया जाए कि विद्यार्थी इसे सुगमता पूर्वक अर्जित कर सकें। यह भी ध्यातव्य है कि व्यावहारिक रूप में प्राय: इसके साहित्यिक रूप को ही प्रमुखता दी गई है जबकि पूर्व कथनानुसार, संवैधानिक उत्तरदायित्व के साथ-साथ इससे अनेक अपेक्षाएँ की गईं हैं। अत: इसके शिक्षण में एक अत्यधिक वैविध्य की अपेक्षा है।

यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि एक भाषा के रूप में इसके अध्ययन-अध्यापन के लिए चारों भाषाई कौशलों में निपुणता प्राप्त करवाना इसके शिक्षण का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए। यद्यपि, सामान्यत: इसे एक प्राचीन भाषा के रूप में परिगणित किया जाता है तथापि इससे की जाने वाली अपेक्षाएँ व अनेक अवसरों पर किया जाने वाला इसका प्रयोग इसे इस दायरे तक सीमित नहीं करता। 'विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय शिक्षा की पाठ्यचर्या की रूपरेखा' (2005) ने इसे एक 'आधुनिक भाषा' के रूप में देखने की बात कही है, अत: तदनुसार इसके अध्ययन-अध्यापन में एक 'विशिष्ट परिवर्तन' की अपेक्षा बनी हुई है।

संदर्भ

श्रीवास्तव, रविन्द्रनाथ: भाषा-शिक्षण (प्रथम संस्करण)

गुप्त, मनोरमा: भाषा-शिक्षण सिद्वान्त और प्रविधियाँ

शास्त्री, चम्मूकृष्ण: ज्ञानेधर्म: उत प्रयोगे?

संस्कृत आयोग (1956-57), हिन्दी अनुवाद

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005

भारतीय संविधान

वर्मा, शीवेन्द्र के.: भाषा-शिक्षण की अधुनातन प्रवृत्तियाँ और हिन्दी भाषा-शिक्षण

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 23, अंक 1, अप्रैल 2016

शोध टिप्पणी/संवाद

वैश्वीकरण के युग में सूचना संचार प्रौद्योगिकी एवं शैक्षिक नवाचार

सुधाकर प्रसाद सिंह* एवं **मनीषा****

सरांश

आधुनिक युग सूचना का युग है। सूचना एवं प्रौद्योगिकी के अविर्भाव से एक ऐसे सूचना महामार्ग का निर्माण हुआ जिसमें पूरी दुनिया एक 'वैश्विक गांव' (ग्लोबल विपेज) का रूप ले लिया है। सूचना एवं प्रौद्योगिकी से शैक्षिक नवाचार को बढ़ावा मिल रहा है। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में स्मार्ट क्लासेस और एम.आई. बोर्ड का उपयोग इसका जीता जागता उदाहरण है।

'वैश्वीकरण' यह अंग्रेजी शब्द ग्लोबलाइजेशन का हिन्दी अनुवाद है, यह एक व्यापक अर्थ वाला सम्प्रत्यय नहीं है। इसमें वसुधैव कुटुम्बकम् में निहित प्रेम, सम्मान एवं विश्व-कल्याण की भावना नहीं है। 'सर्वेभन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः सर्वे भद्राणिपश्यन्तु मा कश्चित् दुख भाग भवेत' का भाव नहीं है। इसका प्रयोग एक आर्थिक-प्रक्रिया तक सीमित है। इसके द्रूत प्रसार का आधार स्तम्भ जैव प्रौद्योगिकी तथा सूचना-संप्रेषण प्रौद्योगिकी में हुई क्रांति है।

वेर्यालस एवं स्मिथ के अनुसार

''वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा अपेक्षाकृत सामाजिक संबंध दूरी सहित तथा सीमा रहित गुण ग्रहण करती है।''

वैश्वीकरण का अर्थ है, राष्ट्रीय, घरेलू अर्थव्यवस्थाओं का विश्व-अर्थव्यवस्था के साथ जुड़ना। इस संस्थिति में वस्तुओं, सेवाओं, कच्चा माल पूँजी, प्रौद्योगिकी उत्पादान

*सिंडिकेट सदस्य, पटना विश्वविद्यालय, पटना
**सहायक प्राध्यापक (शिक्षा विभाग), डी.बी.के.एन. कॉलेज, नरहन, समस्तीपुर

के साधनों आदि का बिना किसी प्रतिबंध के स्वतंत्र रूप से विश्व के देशों में प्रवाह होता है। इस प्रकार की अनेक व्याख्यायें हैं जिसे भूमण्डलीकरण या वैश्वीकरण का नाम दिया जाता है।

वैश्वीकरण को नई सहस्त्राब्दी की प्रमुख विशेषता के रूप में ग्रहण किया जा रहा है। आज के विश्व-समाज में यह अपरिहार्य वास्तविकता का रूप लेती जा रही है। विश्व समाज का कोई भी अंग इससे बच नहीं पा रहा है। वैश्वीकरण सामाजिक परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जिसमें भौगोलिक एवं सांस्कृतिक सीमायें सिकुड़ रही हैं। सीमाओं के सिकुड़ने की पृष्ठभूमि है- द्रूत संप्रेषण एवं परिवहन के साधन। इसका आधार इसका मनोवैज्ञानिक आयाम है, जो कि मनोरंजन, भोजन एवं वेशभूषा एवं भाषा के सतही क्षेत्रों में एकरूपता लाकर विश्व के लोगों को इस ओर आकृष्ट कर रहा है। वास्तव में यह उपनिवेश का ही एक परिष्कृत रूप है, जो प्रथम औद्योगिक क्रांति के बाद आया था परन्तु यह उपनिवेश की तरह प्रशासन का तंत्र खड़ा किए बिना ही संपूर्ण विश्व को पश्चिम देशों के अधीन विशेषत: (जी-7) के अधीन कर रहा है। इस तरह आज वैश्वीकरण कोई सैद्धांतिक सम्प्रत्यय नहीं है, अपितु एक चमचमाता हुआ यथार्थ है, जो मानव-अस्तित्व के हर पक्ष-आर्थिक, समाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय को प्रभावित कर रहा है।

वैश्वीकरण एवं भारत

भारत में 24 जुलाई, 1991 को नई आर्थिक नीति की घोषणा की गई। इस नई अर्थिक नीति के निम्नांकित चार स्तम्भ थे:

(1) वैश्वीकरण
(2) उदारीकरण
(3) निजीकरण
(4) बाजारीकरण

इस नई नीति का श्रेय तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री नरसिंह राव तथा वितमंत्री श्री मनमोहन सिंह (पूर्व प्रधानमंत्री) को जाता है। विषम आर्थिक परिस्थितियों के कारण भारत भी वैश्वीकरण के अभियान में शामिल होने के लिए बाध्य हुआ। परिणामत: भारत की विकसित देशों पर निर्भरता बढ़ गई। इसने वैश्विक अर्थव्यवस्था से अपने को जोड़ लिया।

- वैश्वीकरण का प्रधान अर्थ है एक विश्व-अर्थ तंत्र। पहले गैट (जेनरल एग्रीमेंट ऑन टैरिफ एण्ड ट्रेडस) के जरिए यह प्रक्रिया चलाई जा रही थी। अब इसकी जगह विश्व व्यापार संगठन (W.T.O.) ने ले ली है।
- इसका दूसरा अर्थ है दुनिया की राजनीति को इसी अर्थतंत्र के अनुरूप संचालित करने की परियोजना।
- इसका तीसरा अर्थ है कम्प्यूटर, इंटरनेट और संचार के अन्य आधुनिकतम साधनों के जरिए दुनिया में राष्ट्रों, समुदायों, संस्कृतियों और व्यक्तियों के बीच फासलों का काम से कमतर होते चले जाना।
- इसका चौथा अर्थ है उपग्रहीय टेलीविजन की मदद से एक भूमण्डलीय संस्कृति की रचना करना।

यह भी कहा जा सकता है कि भूमण्डलीकरण के रूप में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया अपने चरम पर पहुँच गयी है। हेनरी किसिंजर ने बेखटके भूमंडलीकरण को 'अमेरिकीकरण' की संज्ञा भी दी है।

वैश्वीकरण एवं सूचना संचार प्रौद्योगिकी

आधुनिक युग सूचना का युग है। इलेक्ट्रानिक्स विस्तार, कम्प्यूटरीकरण एवं सचार क्रांति ने एक साथ मिलकर एक ऐसे सूचना महामार्ग का निर्माण किया है जिससे पूरी दुनिया ने एक विश्वग्राम (Global Village) का रूप ले लिया है।

जन सामान्य को शिक्षित व जागरूक बनाने हेतु आज मीडिया के अनेक साधन मौजूद हैं जिसके द्वारा त्वरित गति से एक साथ असंख्य लोगों को शिक्षित किया जा सकता है। संचार प्रौद्योगिकी के विकास ने मानव संसार के समग्र विकास में योगदान दिया है। संचार प्रौद्योगिकी क्रांति भी वैश्वीकरण की देन है। उभरती संचार और सूचना प्रौद्योगिकियां धीरे-धीरे समस्त मानवीय कार्यकलाप करने लगी हैं। इलेक्ट्रॉनिक खरीददारी, शिक्षा, बैंकिंग, व्यापार, मतदान, घरेलू मनोरंजन, टी.वी. जालतंत्र (नेटवर्क), इलेक्ट्रॉनिक चिकित्सा जैसी शब्दावली से अब सभी परिचित हो चुके हैं। आज बहुराष्ट्रीय निगम सारे संसार में अपने व्यापारिक कार्यकलापों को सुगमता से चला सकते हैं।

सूचना संचार प्रौद्योगिकी द्वारा अनेक विधियों तथा अनेक स्तरों पर शिक्षा को लाभ मिलता है। सामाजिक और आर्थिक दोनों ही दृष्टिकोणों से संचार प्रौद्योगिकी ने शिक्षा और प्रशिक्षण पर प्रभाव डाला है। उभरती हुई संचार और सूचना प्रौद्योगिकी के

अभिसरण द्वारा पृथक प्रकार की प्रौद्योगिकी की क्षमताएँ बढ़ रही हैं। कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी तथा दूरसंचार के परस्पर जुड़ जाने से मानव संप्रेषण के क्षेत्र में नूतन क्रांति का आगमन हुआ है। उभरती प्रौद्योगिकी से ज्ञान प्राप्ति के अवसर प्राप्त होते हैं। इसके द्वारा हम अधिगमोमुख समाज की दिशा में अग्रसर होंगे। इस एकमात्र नवीन विकास से भावी शिक्षा में क्रांतिकारी विकास संभव है।

सूचना संचार प्रौद्योगिकी एवं शिक्षा

आज हम एक ऐसे ज्ञानवान दुनिया में रह रहे हैं जहाँ ज्ञान व्यक्ति विशेष के लिए एक पूँजी तथा ताकत और राष्ट्र के लिए संपदा है। तकनीकी एंव वैज्ञानिक विकास से शिक्षा का रूप परिवर्तित होता जा रहा है। उस पर औद्योगीकरण का काफी प्रभाव पड़ता है। ज्ञान का विस्फोट तीव्र गति से हो रहा है। अत: इस ज्ञान के भंडार को आत्मसात करने के लिए आज हमें विकसित प्रौद्योगिकी के ज्ञान एवं उपयोग की आवश्यकता है। ज्ञान विस्फोट के परिणामस्वरूप ही शैक्षिक प्रौद्योगिकी में भी नवाचार बढ़तें चले जा रहे हैं। आज हर एक अच्छे शिक्षक को इन नवाचारों से अवगत होना चाहिए। ज्ञान प्राप्ति की प्रमुख विधियों में हम अनुभव को काफी महत्वपूर्ण मानते हैं। अनुभव अपने आप में एक महान अध्यापक है। सीखने में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष, दोनों अनुभवों की भूमिका है। सुवधिा की दृष्टि से अप्रत्यक्ष अनुभव से ज्ञान प्राप्ति सरल है। पत्र-पत्रिकाओं को पढ़कर, चित्र, फोटोग्राफ, किसी व्यक्ति से पूछकर किताबों से, फिल्म देखकर या रेडियों, टेप आदि सुनकर हम अप्रत्यक्ष ज्ञान अर्जित कर सकते हैं। इन सभी माध्यमों से प्राप्त सूचना को नियंत्रित एवं व्यवस्थित करते हुए उचित संरक्षण एवं प्रयोग ही सूचना प्रौद्योगिकी है। सूचना की प्राप्ति तथा इसका उपयोग संचार (संप्रेक्षण) के बिना अधूरा है। वह द्विपक्षीय प्रक्रिया है। सूचना का परस्पर आदान-प्रदान से सूचना उपलब्धि एवं उपयोग में सहायता मिलती है। इस प्रकार से सूचना और संचार दोनों का ही ज्ञान प्राप्ति में महत्व है।

सूचना संचार प्रौद्योगिकी (ICI) का अभिप्राय, 'औजारों, उपकरणों तथा अनुप्रयोग आधार से युक्त एक ऐसी तकनीकी से है जो सूचना के संग्रहण, भंडारण, पुन: प्रस्तुतीकरण, उपयोग, स्थानांतरण, संश्लेषण एवं विश्लेषण आत्मसातीकरण आदि के विश्वसनीय एवं यथार्थ संपादन में सहायक सिद्ध होते हुए उपयोगकर्ता को अपना ज्ञानवर्द्धन करने तथा उसके संप्रेषण और उसके द्वारा अपनी निर्णय और समस्या समाधान योग्यता में वृद्धि करने में यथेष्ट सहायक सिद्ध होती है।' (मंगल 2009)

प्राचीन समय में भी सूचना संचार का एकत्रीकरण, संग्रह एवं स्थानांतरण होता था। मौखिक, सांकेतिक तथा मस्तिष्क में संग्रहित करके सूचनाओं का उपयोग होता था। कबूतरों के द्वारा संदेश प्रसारित करने के अपने स्तर से आज हम सेटेलाइट संचार सेवा तक पहुंच गए हैं। इसकी शुरूआत कागज और स्याही के अविष्कार के साथ ही हो गई। 1438 में जर्मनी के गुटेनवर्ग ने छापेखाने की मशीन का अविष्कार कर दूसरा उन्नत कदम उठाया। इसी प्रकार क्रमशः महत्वपूर्ण अविष्कार होते गए और सूचना संचार प्रौद्योगिकी में क्रांति का सूत्रपात हुआ।

सूचना संचार प्रोद्योगिकी का उद्‌भव एवं विकास

निम्न मुद्रण साधकों के अविष्कार ने सूचना संचार प्रोद्योगिकी के विकास में योगदान दिया–

1849 – फोटोग्राफी का अविष्कार इंग्लैंड में हुआ

1900 – फोटोस्टेट सामग्री तकनीक का अविष्कार फ्रांस में हुआ।

1930 – जीरोग्राफी का अविष्कार अमेरिका में हुआ।

1940 – माइकोग्राफी का अविष्कार इंग्लैंड में हुआ।

1960 – लेसर प्रिंटिंग का अविष्कार अमेरिका में हुआ।

20वीं शताब्दी – मेगेनेटिक वीडियो कैमरा, विडियोडिस्क एवं कंप्यूटरों का विकास।

साथ ही साथ सूचना संचार के क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण अविष्कार भी इसकी प्रगति की कहानी कहते हैं:

1837 – टेलीग्राफ का अविष्कार	–	मोर्स
1876 – टेलीपफोन	–	ग्राहम बेल
1895 – रेडियो	–	मारकोनी
1925 – टेलीविजन	–	बेयर्ड

1957 – पहला संचार उपग्रह (U.S.S.R.) अंतरीक्ष में स्थापित

20वीं शताब्दी –केबल एवं फैक्स का अविष्कार हुआ।

इस प्रकार सूचना संचार प्रौद्योगिकी ने सूचना एवं संचार को वैसे ही आसान बना दिया जैसे अन्य तकनीकियों द्वारा हमारे जीवन के अन्य कार्यकलाप सरल हो जाते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में भी सूचना संचार प्रोद्योगिकी का उपयोग जोर–शोर से होने लगा। 1950 में

विश्व में पहली बार सूचना एवं संचार जगत में इसे 'सूचना संचार विज्ञान' कहा गया। धीरे-धीरे इसका दायरा बढ़ता गया। 1960 में इसके उपयोग का दायरा लगभग हमारे जीवन के हर पहलू तक फैल गया। हमारे जीवन का कोई भी पहलू इससे अछूता न रहा। तब इसे 'सूचना संचार प्रोद्योगिकी' कहा जाने लगा। आज इसका उपयोग कक्षा शिक्षण, दूरवर्ती एवं ऑन लाइन एजुकेशन तथा सभी प्रकार के औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षण-अधिगम में निपुणता से कर रहे हैं।

सूचना संचार प्रोद्योगिकी से शिक्षा में नवाचार

नवाचार अपने में नवीनता को समाहित किए हुए हैं। इसके माध्यम से व्यक्ति नवीनता का अनुभव करता है। सूचना संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षा का रूप परिवर्तित होता जा रहा है। उस पर औद्योगिकरण का प्रभाव पड़ रहा है। आज इस प्रौद्योगिकी का शिक्षा में विशेष महत्व हो गया है। इसका प्रौद्योगिकी का ज्ञान आज एक अच्छे शिक्षक के लिए आवश्यक हो गया है। शिक्षा में इनका उपयुक्त प्रयोग वांछनीय है। ये नवाचार निम्न हैं:

बहुमाध्यम उपागम
इन्टरनेट, ई-मेल तथा वर्ल्ड वाइड वेव
ई-मेल
सीडी-रोम
रेडियोविजन
पर्सनलाइज्ड सिस्टम ऑफ इन्स्ट्रक्शन
सैटेलाईट संप्रेषण
मैड्यूलर उपागम
सीमुलेटेड शिक्षण
अन्त:क्रिया प्रणाली
सिस्टम एप्रोच
अभिक्रमित अध्ययन

आधुनिक सूचना संचार प्रौद्योगिकी पंरपरागत प्रौद्योगिकी की तरह एकांगी नहीं है। ये अपने काप में विभिन्न हार्डवेयर तथा सॉफ्टवेयर, मीडिया तथा संप्रेषण प्रणालियों का

सम्मिश्रण है। यू.जी.सी. ने इसका प्रयोग शिक्षा के छात्रों को विशेष सामग्री प्रसारण के लिये करना शुरू किया है। छठी पंचवर्षीय योजना में यू.जी.सी. द्वारा लगभग 1000 कॉलेजों को टेलीविजन सेट दिये गये।

INSAT टेलीविजन का मुख्य उद्देश्य बच्चों, युवकों तथा वयस्कों के लिये शिक्षा के विकल्प उपगमों को प्रस्तुत करना था। CIFL हैदराबाद तथा जामिया मिल्लिया इस्लामिया दिल्ली को रेडियो व टेलीविजन कार्यक्रम बनाने का कार्य दिया गया। मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार तथा UNDP इन प्रयोगों को आर्थिक रूप में मदद दे रही हैं। इसी प्रकार शिक्षा आज धीरे-धीरे इस प्रौद्योगिकी पर निर्भर हो रही है जो शिक्षा जगत के लिए लाभप्रद है।

निष्कर्ष

वैदिक युग के हजारों वर्ष बाद विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी का पुनः आवरण पश्चिम की धरती पर हुआ। पश्चिम में औद्योगि क्रांति के बाद विज्ञान का जीवन के हर क्षेत्र में अनुप्रयोग बढ़ गया। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक विश्व प्रोद्योगिकी क्रांति से संचालित होता रहा। उसे बाद वैश्विक व्यवस्था में अनेक प्रकार के परिवर्तन आये, उनमें एक प्रमुख परिवर्तन सूचना संचार प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई क्रांति है। 'प्रौद्योगिकी की अभूतपूर्व प्रगति ने जीवन के विविध क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है, शिक्षा का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। आज तकनीकी और शिक्षा एक-दूसरे के पर्याय हो रहे है।'' (सक्सेना, 2010) 21वीं शताब्दी ने इस सूचना संचार प्रौद्योगिकी ने सम्पूर्ण विश्व को भूमण्डलनीकृत कर दिया।

संदर्भ

सक्सेना, एन.आर.एवं कुमार,एस (2010), शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्री सिद्धांत, आर.लाल. बुक डिपो, मेरठ

कुल श्रेष्ठ, एस.पी. (2010/2011), शैक्षिक तकनीक के मूल आधार, अग्रवाल पाटिल केशव, आगरा

मंगल, एस.के. एवं मंगल (2009), शिक्षा तकनीकी, पी.एच.आई. प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली

पतंजलि, पी. एवं अंकित, संचार क्रांति और विश्व जनमाध्यम भारत बुक सेंटर 17, अशोक मार्ग, लखनऊ

गुप्त, बी.आर., भारत में जनसंपर्क, काशी हिन्दी विश्वविद्यालय वाराणसी

जोशी, हिन्दी पत्रकारिता, विकास एवं विविध आयाम, राज्य प्रकाशन हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

शर्मा, आर.ए., शिक्षा के तकनीकि आधार, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ

पत्रिका

सिंह, बी.के., गाँवों में सूचना प्रौद्योगिकी का विस्तार, कुरूक्षेत्र, 58, 12, 2012

सिंह, एस.के. सर्वांगीण विकास पर ध्यान, कुरूक्षेत्र, 58, 12, 2012

अनीस, ए. कैमरे से दुनिया को देखती स्त्रियाँ, सहयात्री, 2011

अग्रवाल, एन.एम., उदार एवं विश्वोन्मुखी अर्थव्यवस्था, योजना, 54, 6, 2010

ओझा, डी., संचार क्रांति एवं सूचना प्रौद्योगिकी का भविष्य योजना, 56, 8, 2012

अरोड़ा, इलेक्ट्रॉनिकी और सूचना प्रौद्योगिकी के बढ़ते कदम योजना, 56, 8, 2012

श्रीवास्तव, जी. प्रिंट मीडिया की नयी तकनीक, योजना, 56, 8, 2012

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 23, अंक 1, अप्रैल 2016

शोध टिप्पणी/संवाद

भारतीय संस्कृति में मानव मूल्य एवं मानवाधिकार

आर.पी. पाठक*

भारतीय मनीषियों ने मानव मूल्यों, मानव संबंधों और मानवीय गरिमा को एक उदात्त भावनाभूमि पर अंकुरित करने की अद्वितीय संकल्पना की थी। 'अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्' अपने-पराये का भेद नहीं क्योंकि भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। परम्परागत रूप से चली आ रही विचारधारा पर चिंतन से ज्ञात होता है कि इसमें विभिन्न आदर्शों तथा मानवाधिकारों को समाहित किया गया है। भारतीय संस्कृति मूलतः एक मूल्याश्रित धारणा है जो अनिवार्य रूप से मानव जीवन के आदर्श मूल्यों की ओर संकेत करती है। मानव मूल्य से तात्पर्य है व्यक्ति तथा समाज द्वारा स्वीकृत जीवन मूल्य या पद्धति। मूल्य मानव व्यवहार को नियंत्रित कर दिशा प्रदान करते हैं। भारतीय परम्परा में अनेक जीवन मूल्यों को स्वीकारा गया है जैसे– सत्य, कल्याण तथा सौन्दर्य इत्यादि। सम्भवतः मानव अधिकारों से संबंधित भारतीय जीवन मूल्यों की उत्पत्ति का उल्लेख चारों पुरुषार्थों अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के अंतर्गत किया गया है।

अजयेष्ठासो अकनिष्ठास एते। सं भ्रातरो वावृधुः सौभाग्य[1]**।।**

'समाज में ऊँच-नींच का भेदभाव नहीं है। सभी भाई-भाई हैं। सबको सबकी भलाई और उन्नति करनी चाहिए।'

अथर्ववेद के अनुसार खाद्य पदार्थों तथा जल आदि प्राकृतिक संसाधनों पर सभी मानवों का बराबर अधिकार है।

संगच्छधवं संवदधवं सं वो मनांसि जानताम्।
समानी वः आकूतिः समाना हृदयानि वः।

[1] ऋग्वेद 5.60.5

*(शिक्षाशास्त्र विभाग) श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, कुतुब सांस्थानिक क्षेत्र, नई दिल्ली 110016 E-mail: pathakoham@gmail.com

समानवस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति[2]।।

'अपने संकल्पों, भावनाओं, और विचारों में एकात्मकता हो, आपस में सहयोग से रहने की इच्छा शक्ति दृढ़ हो।'

प्राचीन काल में जब राज्य का कोई अस्तित्व नहीं था तब भी जहां धर्म का सहारा लेकर व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा की जाती थी। उपनिषद् सहित वेद धर्मों के मौलिक स्रोत हैं। स्मृति तथा पुराणों में धर्म के उन नियमों का संकलन किया गया है जिसका प्रमाण निम्न पंक्तियों में मिलता है:

नैव राज्यं न राजाऽऽसीन्न दण्डो न च दाण्डिकः।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षान्तिस्म परस्परम्।।

'वहां न शासन था, न शासक, न दण्ड का विधान था, न ही किसी दोषी को दण्डित किया जाता था। लोग एक दूसरे की रक्षा धर्म के अनुसार आचरण से करते थे।'

वेदों में प्रतिपादित मूलभूत सिद्धांत जिनका उद्देश्य सबको सुख पहुंचाना है वही धर्म है और इन्हीं में सभी मानवाधिकार समाहित है। जो इनके विरुद्ध जाता था उसे अमान्य तथा अवैध माना जाता था। महाभारत के रचयिता तथा वेदों के जनक वेदव्यास जी ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। यह निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है:

श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते।
तत्र श्रौतं प्रमाणं तु तयोर्द्वैधो स्मृतिर्त्वरा।।

जब भी वेदों में वर्णित किसी बात पर स्मृति और पुराणों में कोई मतभेद हो तो ऐसी स्थिति में वेदों का भाष्य ही अधिकृत होता है जिससे प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में धर्म के प्रति आस्था का भाव होता था। कालान्तर में परस्पर विरोधाभासों तथा असमंजस की स्थिति में भगवान बुद्ध ने भी जनहित को सर्वोपरि माना है। इसी संदर्भ में जैन धर्म ने भी एक आदर्श जीवन शैली को विकसित करने में योगदान दिया। नागरिक के कर्तव्य व्यवहार में धर्म के साथ, राजधर्म भी शामिल था। कामन्दक, शुक्रनीति तथा कौटिल्य का अर्थशास्त्र में राजधर्म वर्णित है तथा निम्नलिखित तथ्यों द्वारा स्पष्ट है:

[2] अथर्ववेद 10.58.4

[3] कौटिल्य अर्थशास्त्र 39.42

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्[3]।।

प्रजा के सुख में ही राजा का सुख निहित है। प्रजा के कल्याण में ही उसका कल्याण निहित है। राजा अपनी स्वार्थपूर्ति को उचित न माने, किन्तु जिससे भी प्रजा का हित हो, राजा को उसे ही उचित मानना चाहिए।

प्राचीन काल में गुरुकुल की शिक्षा में मानव मूल्यों की शिक्षा समाहित थी। वैदिक काल में शिक्षा मनुष्य को उच्छा व्यक्ति बनाने तथा उसके सर्वांगीण विकास के लिए थी। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पर आधारित शिक्षा के उस काल के तथ्यों, घटनाओं, आंकडों को केवल कण्ठस्थ कर लेना विद्वता का मानदण्ड नहीं था। मनुष्य के उच्च विचार, नैतिकता, सच्चरित्र एवं पवित्र आचरण का महत्व सर्वोपरि था। चरित्रवान तथा ज्ञानवान व्यक्ति ही समाज में सम्मान का पात्र था। वाल्मीकि, वशिष्ठ, सांदिपिनी, आदि ऋषि-मुनि इसके उदाहरण हैं। श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार ज्ञान का अर्थ पंडिताई या पुस्तक विद्या नहीं है। ज्ञान का अर्थ सद्गुण अथवा ऐसी शिक्षा है जो मनुष्य को सद्गुण का ज्ञान करा सके, यही सच्ची शिक्षा है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम का चरित्र बाल्मीकि रामायण में चित्रित है। पौराणिक कथाओं, पंचतन्त्र की कथाएँ, विक्रमादित्य के जीवन पर आधारित बेताल पच्चीसी की कथाएँ, बौद्धकालीन जातक कथाएँ हमें विवेकशील, सदाचारी, आदर्शवान् तथा नैतिक मूल्यों के प्रति सजग रहने को प्रेरित करती है।

तैत्तिरीयोपनिषद् में विद्यार्थी को सलाह दी गई है कि हित तथा कल्याण की उपेक्षा मत करना तथा शिष्यों से निम्न अपेक्षाएँ भी की गई हैं:

> 'अध्ययन तथा सम्भाषण में सदाचारी बनना, वाणी से सत्याचरण करना। अध्ययन के साथ तप, दम (इन्द्रिय निग्रह), शम (मन का नियंत्रण), आतिथ्य, विनम्रता, आश्रितों की रक्षा, शान्ति का पालन करना तथा अध्ययन में प्रमाद न करना इत्यादि। दूसरों के प्रति सद्भावना रखना, गुरु में उपस्थित अनुकरणीय बातों की उपासना करना अन्य की नहीं[4]। जब-जब आचार के संबंध में शंका उत्पन्न हो तो महान शिक्षकों के आचरण का अनुसरण करना।'

मानव मूल्यों की दृष्टि से जैन शिक्षा का दर्शन एक अति समृद्ध दर्शन है। जैन दर्शन द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के उद्देश्यों की विवेचना करने पर हमें मानव मूल्यों का स्पष्ट विवरण मिल जायेगा। शिक्षा केवल ज्ञानार्जन ही नहीं, अपितु व्यक्ति के जीवन के गहन रूप से

[4] यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।

संबंधित एक कठोर अनुशासन है। वह ज्ञान शिक्षा ही है जो व्यक्ति को सच्चरित्र की ओर प्रेरित करता है। वास्तविक ज्ञान के द्वारा हम अपने जीवन में सक्रिय एवं ज्वलित कुप्रवृत्तियों जैसे क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि कषायों को समाप्त कर सकते हैं। इस सम्यक् ज्ञान को शिक्षा का प्रथम उद्देश्य कहा गया है। सम्यक् दर्शन शिक्षा का दूसरा उद्देश्य है इसे गुरु के प्रति श्रद्धा तथा आगम (ज्ञान) के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

सम्यक् दर्शन के द्वारा ज्ञान को सत्प्रवृत्तियों के साथ जोड़ा जा सकता है। सम्यक् ज्ञान अध्ययन द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। परंतु सम्यक् दर्शन का उदय मानव के अन्दर अज्ञान के प्रति विरक्ति उत्पत्ति होने पर ही सम्भव है। सम्यक् दर्शन के द्वारा मनुष्य को ग्रहणशील बनाना तथा सत्कर्म की ओर प्रेरित करना है। सम्यक् चरित्र (अहित कार्यों का निवारण तथा हित कार्यों का आचरण), शिक्षा का तीसरा तथा अन्तिम उद्देश्य है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति वाले व्यक्तियों को वास्तविक रूप से शिक्षित कहा जा सकता है। शुद्ध रूप से सच्चरित्र वह व्यक्ति है जिसने अपने जीवन में पांच महाव्रतों को प्रमुख स्थान दिया हो तथा दस गुण धर्म उसके जीवन के अंग बन गये हों।

पंच महाव्रत

अहिंसा– किसी भी प्राणी को मन, वचन तथा कर्म से शारीरिक अथवा मानसिक कष्ट न देना।

सत्य– विचार, वाणी तथा व्यवहार में झूठ न बोलना तथा सच्चाई का पक्ष लेना।

अस्तेय– स्थूल अथवा सूक्ष्म किसी भी प्रकार से चोरी न करना।

ब्रह्मचर्य– काम भोगों से संयम बरतना।

अपरिग्रह– विषयासक्ति का त्याग करना तथा वस्तुओं के संग्रह में नियन्त्रण करना।

दस गुण धर्म

क्षमा, कोमलता, सत्य, सरलता, संयम, मन तथा शरीर की शुद्धता, तप, त्याग, अममत्व, ब्रह्मचर्य ये दस गुण धर्म हैं।

जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक छात्र का अद्वितीय व्यक्तित्व है। वह अपने आचरण में स्वतंत्र तथा कर्मों के लिए भी स्वयं उत्तरदायी है। अत: अध्यापक के लिए यह अपेक्षित है कि अध्यापन करते समय यह ध्यान रखें कि बच्चों की इस स्वतंत्रता का अतिक्रमण न हो। पाठ्य–सामग्री का चयन इस प्रकार हो कि बच्चों में स्वयं निर्णय लेने की मनोवृत्ति तथा उत्तरदायित्व की भावना का विकास हो। श्रमण से यह अपेक्षा है कि आचरण संबंधी व्यवहार के ज्ञान का प्रतिबिम्ब उसके दैनिक आचरण में हो।

बौद्ध शिक्षा में समानता, बंधुता तथा दैनिक जीवन आचरण को शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य माना है। अप्प द्वितीयो भव, भवन्तु सब्व मंगलम्, बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय आदि शिक्षाओं से शिक्षा के हर पक्ष में चरित्र निर्माण पर जोर दिया गया है। मानव व्यक्तित्व के विकास के अन्तर्गत आत्म-सम्मान, आत्म-निर्भरता, आत्म-संयम, आत्मविश्वास तथा विवेक आदि पर जोर दिया गया है। बुद्ध के द्वारा संसार को चार आर्य सत्य तथा आष्टांगिक मार्ग वास्तव में एक सरल तथा विकसित नैतिक आचार-संहिता दी गई है। इसके द्वारा व्यक्ति एक नेक और सदाचारी व्यक्ति के रूप में रूपान्तरित हो जाता है तथा विश्व कल्याण हेतु, शान्ति स्थापित करने हेतु अग्रसर हो जाता है।

आष्टांगिक मार्ग

सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक्वाक्, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् संस्कृति, सम्यक् समाधि ये आष्टांगिक मार्ग हैं। सम्पूर्ण बौद्ध शिक्षा प्रणाली में बौद्ध दर्शन का 'मध्यमा-प्रतिपदा' तथा 'प्रतीत्य समुत्पाद' सिद्धान्त परिलक्षित होता है। इसके अनुसार संसार में घटने वाली घटना का एक कारण होता है तथा संसार का घटनाक्रम प्रभाव नियम के अनुसार चलता है। मनुष्य के विकास में नैतिक कार्य-कारण (नैतिक प्रतीत्य समुत्पाद) सक्रिय रहता है।

भारत ने विश्व को **वसुधैव कुटुम्बकम्, बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय!,** जियो और जीने दो, आदि अवधारणाओं से शान्ति का पाठ पढ़ाया। इस प्रकार भारतीय संस्कृति में विद्यमान मानव अधिकार एवं धर्म की रचना, लोगों की भलाई, सुख, समृद्धि तथा प्रगति के लिए की गई। इसमें प्रत्येक मानव को सुख का अधिकार है। इस भावना को आदर्श रूप में माना गया। यही जीवन मूल्य भारतीय संस्कृति में विद्यमान मानव मूल्य तथा मानव अधिकार को दर्शाते हैं। इसलिए इसे नित्य दैनिक जीवन की प्रार्थना में सम्मिलित किया गया है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।।

अर्थात् सभी सुखी हों, सभी रोगों से मुक्त हों, सभी शुभ वस्तुओं को देखें, किसी को कोई दुःख न हो।

वर्तमान समय में पश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण के कारण जीवन आधारित शाश्वत स्थायी मूल्यों में विकृति उत्पन्न हो गई है। धनोपार्जन व बल शक्ति प्रदर्शन के कारण

मानव जाति में अशांति, संघर्ष, भय, अनिश्चितता और अविश्वास उत्पन्न हो गया है। मानव में शांति व सौहार्द, भाईचारे का अभाव, वर्तमान में अंधानुकरण, प्राचीन भारतीय शिक्षा एवं मानव मूल्यों से वर्तमान पीढ़ी की दूरी के कारण ही यह स्थिति है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति में विद्यमान मानव मूल्यों की शिक्षा ही व्यावहारिक जीवन के तनावमुक्त वातावरण को दूर करने में सक्षम है। भारतीय संस्कृति के मूल में उदार विचार की रसधारा आज भी साहित्य में विद्यमान है तथा वर्तमान में यन्त्र की प्रतियोगितात्मकता एवं विषम परिथितियों में भी सूखने नहीं पाई है। विश्व के विकसित देश भले ही आर्थिक क्षेत्र में अपना विकसित वर्चस्व स्थापित करें, प्राचीनतम् संस्कृति में विद्यमान मानव मूल्य तथा मानव अधिकार विश्व का सदैव मार्गदर्शन करते रहेंगे। आईये, इस मानव कल्याणकारी मूल्य शिक्षा से अपने जीवन को आलोकित करें और मानव–मानव के बीच रिक्तता को कम करके परिवार, समुदाय, समाज, राष्ट्र और विश्व में शान्ति की स्थापना करें तथा मानव के प्रति प्रेम, स्नेह एवं सुख की आधारशिला रखें। भारतीय संस्कृति और परम्परा में मानव सदैव सुरक्षित रहें, मानव मूल्य अजर–अमर रहें और मानव अपने अधिकारों से अवगत होकर कर्त्तव्य कर्म करे। यही भारतीय संस्कृति है जिसका संदेश है– 'विश्वं भवत्येक नीडम्।।'

संदर्भ

ऋग्वेद

अथर्ववेद

महाभारत

कौटिल्य का अर्थशास्त्र

तैत्तिरीयोपनिषद्

जैनदर्शन

बौद्धदर्शन

पाठक, आर. पी. (2010) *भारतीय परम्परा में शैक्षिक चिन्तन*, कनिष्क प्रकाशन, दिल्ली

पाण्डेय, रामशकल (2001) *शिक्षादर्शन*, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

मुखर्जी, आर.एन. (2006) *भारतीय समाज व संस्कृति*, विवेक प्रकाशन, दिल्ली

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 23, अंक 1, अप्रैल 2016

शोध टिप्पणी/संवाद

वैदिक कालीन शिक्षा में मानव जीवन मूल्यों का संपोषण

एस.डी. सिंह 'परिहार'*

सारांश

प्राचीनकाल में व्यक्ति के भौतिक एवं आध्यात्मिक जीवन के निर्माण तथा विभिन्न सामाजिक उत्तरदायित्वों को संपादित करने हेतु शिक्षा ही उसका सबसे अचूक शस्त्र था। मनुष्य एवं समाज का अध्यात्मिक एवं बौद्धिक उत्कर्ष शिक्षा के माध्यम से ही सरल संभव था। वैदिक युग में ज्ञान से सम्पन्न व्यक्ति ऋषि-ऋण से मुक्त हो जाता था तथा उसे समाज में सर्वोच्च प्रतिष्ठा प्राप्त होती थी। ऋग्वेदकालीन समाज में भी भौतिक ज्ञान की अपेक्षा बौद्धिक ज्ञान का अधिक महत्व था। उस युग में तो ऊँचे विचार, ज्ञान की महिमा, त्यागमय जीवन, अध्यात्मिक चिन्तन और भौतिक आकर्षण के प्रति विरक्ति ही मनुष्य के जीवन के मूल्य हुआ करते थे। मनुष्य की धार्मिक वृत्तियों का उत्थान, उसके चरित्र का उत्थान, उसके व्यक्तिव का उत्थान, उसके सामाजिक उत्तरदायित्वों का निष्पादन तथा उसके सांस्कृतिक जीवन का उन्नयन ही शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य था। यह उद्देश्य मनुष्य जीवन के श्रेष्ठ मूल्यों पर आधारित था। फलत: शिक्षा द्वारा ही मनुष्य अपने जीवन के समस्त उद्देश्यों की पूर्ति में सफलता प्राप्त करता था। ज्ञान के बिना मनुष्य का व्यक्तिव संकुचित एवं जीवन बोझिल हो जाता है। संसार की समृद्धि और अभिष्टि की प्राप्ति ज्ञान पर ही आधारित रहती है। कोई मनुष्य अन्य किसी मनुष्य से बड़ा उसी स्थिति में होता है जब उसकी बुद्धि व मस्तिष्क शिक्षा द्वारा तीव्र और उच्च होती है। इस प्रकार तत्कालीन

*विभागाध्यक्ष, बी.एड., स्नातकोत्तर महाविद्यालय गाजीपुर (उ.प्र.)

शिक्षा की सार्थकता इसी में थी कि वह मनुष्य को संतुलित और श्रेष्ठ जीवन प्रदान करे। मनुष्य का आत्मिक विकास, संसारिकता से आध्यात्मिकता की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति, गुण-अवगुण को परखने की शक्ति तथा उचित-अनुचित के विश्लेषण की वृत्ति से ही सम्भव रही है। आज आवश्यकता है शिक्षा के इन्हीं उद्देश्यों, आवश्यकताओं एवं महत्व आदि को प्राचीन शिक्षा की भाँति ही मूल्यपरक बनाने की, जिससे हमारी भावी पीढ़ी विकास के साथ-साथ अपने मूल्य एवं संस्कृति को भी विनाश से बचाने में सक्षम रह सके।

प्राचीनकाल से ही भारतीय समाज में शिक्षा का स्वरूप अत्यन्त ज्ञानपरक, सुव्यवस्थित और सुनियोजित रहा है, जिसमें व्यक्ति के लौकिक एवं पारलौकिक जीवन के लिये विभिन्न प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। व्यक्ति के भौतिक एवं आध्यात्मिक जीवन के निर्माण तथा विभिन्न उत्तरदायित्वों को सम्पादित करने हेतु शिक्षा उसके लिए सबसे अचूक शस्त्र था। मनुष्य एवं समाज का आध्यात्मिक और बौद्धिक उत्कर्ष शिक्षा के माध्यम से ही सरल सम्भव था। ''**सा विद्या या विमुक्तये। विद्यान्या शिल्पनैपुण्यम्।**'' विद्या से मुक्ति प्राप्त होती है तथा मनुष्य शिल्प में निपुणता प्राप्त करता है। इस तरह ज्ञान के आलोक से मनुष्य का जीवन आलोकित होता है, क्योंकि किसी भी कार्य को करने वाले दो प्रकार के लोग होते हैं, एक तो वे जो उसको समझ या ज्ञान से करते हैं, दूसरे वे जो बिना समझे या अज्ञान से करते हैं, किन्तु ज्ञान और अज्ञान दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं। ज्ञान (विद्या) और सच्चे लगन से जो व्यक्ति कार्य करता है वह अधिक शाक्तिशाली होता है। **छांदोग्य उपनिषद** में वर्णित है:

'उभौ कुरूतौ यश्चैतदेवं वेदयश्च न वेद।
ननना तु विद्या चाविद्या च। यदेव विद्यया
क्रोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति।।'

वस्तुत: ज्ञान से व्यक्ति का कर्म और आचरण परिष्कृत और दिव्य हो जाता है तथा वह ज्ञान सम्पन्न होकर देवतुल्य हो जाता है। वैदिक युग में ऐसे ज्ञानी व्यक्ति को सर्वोच्च प्रतिष्ठा प्राप्त होती थी तथा जब व्यक्ति ज्ञान से सम्पन्न हो जाता था, तब वह ऋषि-ऋण से मुक्त हो जाता था। ऋग्वेदकालीन समाज में भी भौतिक ज्ञान की अपेक्षा बौद्धिक ज्ञान का अधिक महत्व था। उस युग में तो ऊँचे विचार, ज्ञान की महिमा, त्यागमय जीवन, अध्यात्मिक चिन्तन और भौतिक आकर्षण के प्रति विरक्ति ही मनुष्य के जीवन के मूल्य हुआ करते थे। **ऋग्वेद** के **गायत्री मन्त्र** को उस समय ज्ञान का उच्चतम आधार माना जाता था।

तत्कालीन शिक्षा के उद्देश्य

ज्ञानार्जन से मनुष्य आत्मनिर्भरता तो प्राप्त करता ही है, साथ ही परिवार, समाज व राष्ट्र के निर्माण में योगदान भी करता है। मनुष्य की धार्मिक वृत्तियों का उत्थान, उसके चरित्र का उत्थान, उसके व्यक्तिव का उत्थान, उसके सामाजिक उत्तरदायित्वों का निष्पादन तथा उसके सांस्कृतिक जीवन का उन्नयन शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य हैं। शिक्षा के माध्यम से मनुष्य अपने इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति में लगा रहता है। **प्रथम उद्देश्य** में सामान्यत: विद्यार्थी के लिए संध्या-वन्दना, पूजा-पाठ, स्नान, सचरित्रता आदि धर्म के अन्तर्गत गृहित किये गये थे। सत्य बोलना भी प्रमुख माना गया था, इसीलिए **अमृत मंथन** में यह कहा गया है कि-

''सर्वे: धर्मा: क्षयं यन्ति यदि सत्यं न विद्यते।''

अर्थात सत्य न बोलने से भी धर्मो का क्षय हो जाता है। शिक्षार्थी के विभिन्न नियम ध र्ममूलक प्रवृत्तियों के विकास में सहायक होते थे। इन्हीं नियमों के आधार पर विद्यार्थी लौकिक एवं पारलौकिक जीवन को समझ पाने तथा विभिन्न उत्तरदायित्वों को सम्पादित करने में सफल होता था। वह अध्यात्मिक जगत के विषय में जानने का प्रयास करता था तथा उसके निमित्त सात्विक जीवन को और भी तप:शील करता था।

शिक्षा का दूसरा उद्देश्य शिक्षार्थी के चरित्र का उत्थान करना था। इसके अन्तर्गत शिक्षार्थी नैतिक क्रियाएं सम्पन्न करता हुआ सन्मार्ग का अनुसरण करता था। **मनुस्मृति** में वर्णित-

'सावित्रोमात्रसारोऽपि वरं विप्र: सुयन्त्रित:।
नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविकयी।।'

उस समय चरित्र एवं आचरण का इतना बड़ा महत्व था कि समस्त वेदों का ज्ञाता विद्वान, सच्चरित्रता और सदाचरण के अभाव में माननीय नहीं था, किन्तु केवल गायत्री मन्त्र का ज्ञाता पंडित अपने सच्चरित्रता के कारण माननीय और पूज्यनीय था। चरित्र और आचरण के उत्थान में ब्रह्मचारी का व्रत अनिवार्य था, इसलिए शिक्षार्थी को ब्रह्मचर्यव्रती कहा गया था। ब्रह्मचारी का जीवन सत्य, तप और नियम का जीवन था, इसीलिए **अथर्ववेद** में कहा गया है कि-

'ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् विभर्त्ति।
तस्मिन देवा अधि विश्वे निषेदु:।।'

अर्थात ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करने वाला ही तेजोमय ब्रह्म (ज्ञान) को धारण करता था तथा उसमें समस्त देवता अधिवास करते थे।

विद्यार्थी के व्यक्तिव का विकास ही **शिक्षा का तीसरा उद्देश्य** था क्योकि ज्ञान की प्राप्ति से ही शिक्षार्थी विभिन्न कर्तव्यों का पालन कर सकने में सफल होता था, इससे उसके अन्दर आत्म-संयम, आत्म-चिन्तन, आत्म-विश्वास, आत्म-विश्लेषण, विवेक-भावना, न्याय-प्रवृत्ति तथा आध्यात्मिक वृत्ति का उदय होता था। **'गीता'** में कहा गया है कि-

'युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टयस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगी भवति दुःखहा।।'

अर्थात संयमयुक्त योग उस व्यक्ति के ही दु:खों को दूर करता है जो यथा योग्य आहार-विहार करने वाला, कर्मो में यथा योग्य रत रहने वाला तथा यथा योग्य सोने वाला और जागने वाला होता है।

शिक्षा के चतुर्थ उद्देश्य द्वारा ही विद्यार्थी ज्ञानवान होता था, फलत: वह अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों का निष्ठापूर्वक पालन करता था। स्नातक के रूप में वह अपने ही हित का ध्यान नहीं रखता अपितु अन्यान्य जिज्ञासु विद्यार्थियों को नि:शुल्क ज्ञान भी प्रदान करता था। वह अपने कर्मो को करते हुये पुत्र, पति एवं पिता के रूप में अपने विभिन्न सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन भी करता था।

'तैत्तिरीय उपनिषद' में विद्यार्थी के **समावर्त्तन समारोह के उपदेश** संबंधी निम्न उल्लेख मिलता है-

'सत्यं वद। धर्मचर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं
धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्।
धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्।
स्वाध्यायप्रवचनाभयां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।
मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।
यान्यनवधानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि।
यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।
ये के चास्मच्छेयांसो ब्रह्मणाः तेषां त्वयाऽसनेन प्रश्वसितव्यम्।

श्रद्धया देयम्। संविदा देयम्। श्रिया देयम्। ह्रया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। अथ यदि कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात ये तत्र ब्रह्मणाः संमर्शिनः युक्ता आयुक्ता अलूक्षा धम्मंकामाः स्युः यथा ते तेषु वर्त्तेरन् तथा तेषु वर्त्तेयाः। एष आदेशः। एषः उपदेशः। एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्। एवम् चैतदुपास्यम्।

अर्थात सत्य बोलना, धर्म का आचरण करना, स्वाध्याय में प्रमाद न करना, आचार्य की दक्षिणा दे लेने पर सन्तति उत्पन्न की परम्परा विच्छिन्न न करना, सत्य से न हटना, धर्म से न हटना, लाभ कार्य में प्रमाद न करना, महान बनने के सुअवसर न चूकना, पठन-पाठन के कर्तव्य से प्रमाद न करना, देवता और पितरों के कार्य (यज्ञ एवं श्राद्ध आदि) से प्रमाद न करना, माता को देवी समझना, पिता को देवता समझना, आचार्य को देवता समझना, अतिथि को देवता समझना, अन्यान्य दोष-रहित कार्यों को करना। तुम हमारे अच्छे कार्यों का ही अनुसरण करना अन्य का नहीं। कुछ ब्राह्मण हमसे भी श्रेष्ठ हैं तुम उन्हें आसन देकर समादार करना। जो कुछ भी दान देना श्रद्धा से देना। प्रसन्नता से देना। शीलपूर्वक देना। भय से देना। दया से देना। यदि धर्म या शिष्टाचार के संबंध में तुम्हें शंका हो तो तुम उन ब्राह्मणों से परामर्श करो जो समदर्शी हों, उस कार्य के लिए युक्त हों किन्तु कठोर स्वभाव के न हों। वे जैसा व्यवहार करते हों वैसा करो। यही तुम्हें हमारा आदेश है। यही उपदेश है। वेद और उपनिषद् (का तत्व) यही है। यही अनुशासन है। तुम इसी की उपासना करना तथा तुम इसका इसी रूप में पालन करना। अतएव इस कथन से स्पष्ट होता है कि विद्यार्थी शिक्षा प्राप्ति के पश्चात अपने सम्पूर्ण सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूर्ण करता था।

अपनी सन्तति को शिक्षा द्वारा ही शिक्षित करना और प्राचीन संस्कृति की ओर प्रवृत्त करना **शिक्षा का पंचम लक्ष्य** था। वैदिक साहित्य तथा अन्यान्य विषयों का ज्ञान और उसका प्रसार शिक्षा का प्रधान आधार था। वेदों को कंठस्थ करना और उन्हें यत्नपूर्वक मस्तिष्क में सुरक्षित रखना तत्कालीन शिक्षार्थी का प्रमुख कर्तव्य था तथा **आर्य संस्कृति का प्रमुख उद्देश्य** भी था। अतएव **तत्कालीन शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य जीवन के श्रेष्ठ मूल्यों पर आधारित था।** फलतः शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य अपने जीवन के समस्त उद्देश्यों की पूर्ति में सफल होता था।

शिक्षा ही सर्वाधिक मूल्यवान

मनुष्य के जीवन में ज्ञान का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। ज्ञान के बिना मनुष्य का व्यक्तिव संकुचित है तथा जीवन बोझिल है। **विष्णु पुराण** में कहा गया है कि **'अन्धं तम इवाज्ञानम्'** अर्थात अज्ञानता अन्धकार के समान है। अतः अज्ञानी मनुष्य का जीवन अन्धकारमय है। उसके कर्मों की कोई महत्ता नहीं। **'छांदोग्य उपनिषद'** में कहा गया है कि- **'तेनोभौ कुरूतौ यश्चैतदेव वेद यश्च न वेदं। नाना तु विद्या चाविद्या च यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवतीति खल्वेतस्यैवाक्षरस्योपव्याख्यानं भवति।'** अर्थात अक्षर को जानने और न जानने वाले दोनों कर्म करते हैं। किन्तु ज्ञान एवं अज्ञान दोनों अलग-अलग फल देने वाले होते हैं। जो कर्म ज्ञान, श्रद्धा तथा योग से संयुक्त होकर किया जाता है वहीं प्रबलतर होता है। संसार की समृद्धि और अभिष्ट की प्राप्ति ज्ञान पर ही आधारित रहती है। ज्ञान का आलोक तिमिराच्छन्न जीवन को प्रकाशमय कर देता है तथा मनुष्य को सन्मार्ग दिखाता है, इस प्रकार उसके जीवन की समस्त बाधाएं एवं कठिनाइयाँ ज्ञान के द्वारा समाप्त हो जाती हैं। **'ऋग्वेद'** में वर्णित- **'अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सरवायो मनोजपेषु असभावभूवुः'** से स्पष्ट होता है कि पूर्व वैदिक युग में भी शिक्षा का अधिक महत्व था। उस समय तक ज्ञान का महत्व स्थापित हो चुका था एवं प्रत्येक क्षेत्र में मनुष्य का ज्ञान अप्रतिम और अनुपम माना जाता था। इस प्रकार मनुष्य जीवन में शिक्षा ही सबसे अधिक मूल्यवान थी।

शिक्षा की सार्थकता

शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य का जीवन समृद्ध और उन्नत होता है उसकी बुद्धि और प्रज्ञा सुदृढ़ और प्रांजल होती है। कोई मनुष्य अन्य किसी मनुष्य से बड़ा उसी स्थिति में होता है जब उसकी बुद्धि और मस्तिष्क शिक्षा द्वारा तीव्र और उच्च होती है। इसीलिए **नीतिशतक** में **'विद्याहीनः पशुः।'** अर्थात विद्याहीन मनुष्य को पशुवत कहा गया है। शिक्षा से ही मनुष्य अपना जीवन सार्थक करता है क्योंकि शिक्षा के बिना उसका जीवन निरर्थक व सारहीन रहता है। इसके संयोग से बुद्धि प्रखर, बोध-क्षमता विकसित तथा विवेक संपुष्ट होता है। शिक्षा मनुष्य को पथभ्रष्ट होने से बचाती है, फलतः वह सत्य मार्ग का अनुगामी होकर अपने इहलौकिक एवं पारलौकिक जीवन को सुखमय बनाता है। इस प्रकार शिक्षा का आदर्शात्मक विनियोग मनुष्य को क्रियाशील और सन्नद्ध बनाना है, जिससे वह अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर सकता है।

अतएव **तत्वकालीन शिक्षा की सार्थकता** इसी में थी कि वह मनुष्य को संतुलित और श्रेष्ठ जीवन प्रदान करे। मनुष्य का आत्मिक विकास, संसारिकता से अध्यात्मिकता की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति, गुण-अवगुण को परखने की शक्ति तथा उचित-अनुचित के विश्लेषण की वृत्ति शिक्षा से ही संभव रही है। वर्तमान समय में जबकि मनुष्य विकास की दौड़ में अपने अस्तिव, अपनी संस्कृति एवं अपने नैतिक मूल्यों आदि से विरत होते हुए आपा-धापी करता जा रहा है। वह दिन दूर नहीं जब पाश्चात्य देशों की तरह सुख-सुविधा से परिपूर्ण होते हुए भी मानसिक शान्ति एवं आत्म संतुष्टि से कोसों दूर हो जायेगा, तब पुनः उसी प्राचीन शिक्षा के द्वारा हमारे सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा, नैतिक एवं चारित्रिक विकास, सामाजिक कर्तव्यों का पालन आदि सम्भव हो पायेगा।

अतः आज आवश्यकता है शिक्षा के उद्देश्यों, आवश्यकताओं तथा महत्व आदि को मूल्य परक बनाने की जिससे हमारी भावी पीढ़ी विकास तो करे किन्तु अपने मूल्यवान संस्कृति को विनाश से बचाने में भी सक्षम रहे। क्योंकि किसी भी युग में मानव जीवन तभी सफल रहा है जब वह अपनी संस्कृति अपना धर्म एवं अपनी शिक्षा को अपने सन्तति के लिए संजोने में प्रयत्नशील रहा हो। यही हमारे जीवन के लिए वास्तविक शिक्षा मूल्य होगा।

संदर्भ

अथर्ववेद : सम्पादक, आर. रौथ और डब्ल्यू.डी. हिट्ने, वर्लिन, 1856, सम्पादक, श्रीपाद शर्मा, ओहानगर, 1938

अलतेकरः *प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति,* मनोहर प्रकाशन, वाराणसी-1979-80

अमृत मन्धन-15.4

उपनिषद : *उपनिषद निर्णय,* सागर प्रेस, बम्बई, गीता प्रेस, गोरखपुर। वृहदारण्यक उपनिषद, छांदोग्य उपनिषद, तैत्तिरीय उपनिषद आदि।

ऋग्वेद : सायण भाग्य सहित, सम्पादक, एफ. मैक्समूलर, 1890-92, 5 भाग, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, 1933-51

गीता : गीता प्रेस, गोरखपुर

घुरये, जी.एस., *वैदिक इण्डिया,* बाम्बे, 1979.

घोषाल, यू.एन., *स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर,* कलकत्ता, 1917.

नीतिशतक-16

मजूमदार, एन.एम., *ए हिस्ट्री आफ एजुकेशन इन एन्सेंट इण्डिया,* कलकत्ता, 1916.

मुकर्जी, आर.के. *एन्सेंट इण्डियन एजुकेशन*, लन्दन, 1951.

मनुस्मृति : कुल्लूक भट्ट की टीका सहित बम्बई, 1946, मेघा तिथि की टीका के साथ कलकत्ता, 1932

मिश्र डा. जयशंकर : *प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास*, पटना–2001

विष्णु पुराण : बम्बई, 1889 : विल्सन, 5 भाग, लन्दन, 1864–70 : गीता प्रेस गोरखपुर, सं. 2009.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 23, अंक 1, अप्रैल 2016

शोध टिप्पणी/संवाद

उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के गृह वातावरण तथा संज्ञानात्मक शैली का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर प्रभाव का अध्ययन

विजय जायसवाल* एवं **एकता दूबे****

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन में उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के गृह वातावरण तथा संज्ञानात्मक शैली का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर प्रभाव का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में जनसंख्या के रूप में कानपुर नगर के उच्चतर माध्यमिक स्तर के यू.पी. बोर्ड के समस्त छात्र व छात्राओं को चुना गया था जो कि वर्ष 2013-14 में अध्ययनरत् थे। प्रस्तुत अध्ययन में साधारण यादृच्छिक न्यादर्शन प्रविधि से 50 छात्र व 50 छात्राओं को न्यादर्श के रूप में लिया था। प्रदत्तों के विश्लेषण के लिए सांख्यिकीय तकनीकों का प्रयोग किया गया है। चरों के मध्य संबंध को देखने के लिए माध्य, मानक विचलन तथा टी-मूल्य को लिया गया है। अध्ययन में यह स्पष्ट हुआ है कि गृह वातावरण तथा संज्ञानात्मक शैली का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर लैंगिक निरपेक्ष प्रभाव नहीं पड़ता है।

प्रस्तावना

शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा छात्रों का विकास होता है। यह प्रक्रिया ऐसी नहीं है कि निश्चित समय पर प्रारम्भ हो और निश्चित समय पर समाप्त हो। शिक्षा कभी भी कहीं भी प्राप्त की जा सकती है। इसलिए शिक्षा को जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया माना जाता है। जब बालक में विकास की प्रक्रिया शुरु होती है तब उनमें कुछ न कुछ विभिन्नताएं परिलक्षित होने लगती हैं। हम लोग अपने ज्ञान को कैसे ग्रहण करते हैं, उसे

*सह आचार्य, शिक्षा शास्त्र विभाग, चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

संचित करते हैं, उसका स्मरण या पुन: प्राप्ति करते हैं तथा उसका उपयोग करते हैं आदि सभी मानसिक प्रक्रियाएं संज्ञानात्मक शैली (Cognitive Style) में सम्मिलित हैं। संज्ञानात्मक मनोविज्ञान में संज्ञानात्मक शैली जिसे विचारात्मक शैली के नाम से जाना जाता है, वह शब्द है जो किसी व्यक्ति की किसी समस्या से संबंधित विचार करने, सूचना/ज्ञान के ग्रहण करने, प्राप्त सूचनाओं को याद करने और उन सूचनाओं को समस्याओं के समाधान के बारे में उपयोग करना बताता है। सिंगल के अनुसार, *''संज्ञानात्मक शैली को सूचनाओं को संकलित करने एवं उपयोग में लाने की एक सतत् प्रक्रिया के रूप में समझा जा सकता है।''*

बहुत से मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि संज्ञानात्मक शैली संज्ञानात्मक योग्यता में ही निहित है लेकिन संज्ञानात्मक शैली संज्ञानात्मक योग्यता से भिन्न है, क्योंकि संज्ञानात्मक योग्यता का मापन *''अभिवृत्ति परीक्षण या बुद्धि परीक्षण के द्वारा किया जा सकता है। संज्ञानात्मक शैली को कार्यविधि के ऐसे ढंग के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसे कोई व्यक्ति अपनी प्रत्यक्षात्मक और बौद्धिक क्रियाओं में प्रदर्शित करता है।''* विटकिन एवं अन्य के अनुसार- *''किसी भी भौतिक एवं सामाजिक वातावरण की समस्याओं के समाधान के लिए कोई भी व्यक्ति किस तरह की सूचनाओं का प्रयोग करता है, उसी को उसकी संज्ञानात्मक शैली कहा जाता है।''* शैक्षिक क्षेत्र में संज्ञानात्मक शैली का अर्थ शैक्षिक अभिरुचि, अधिगम एवं शैक्षिक उपलब्धियों से है। कोई भी व्यक्ति अपनी पसन्द एवं नापसन्द के आधार पर जिन विभिन्न विषयों को चुनता है उसी को उसकी शैक्षिक अभिरुचि के रूप में अभिहित किया जाता है। संज्ञानात्मक शैली के अन्तर्गत अधिगम शैली का यह अर्थ लगाया जाता है कि कोई भी व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में स्मरण शक्ति के आधार पर विभिन्न सूचनाओं का प्रयोग किस तरह करता है। छात्रों के दृष्टिकोण से अधिगम शैली अधिगम आब्यूह से संबंधित है। शैक्षणिक कार्यों को करने में दक्षता का मूल्यांकन अध्यापकों के द्वारा या मानक परीक्षणों के द्वारा या दोनों के द्वारा किया जाता है। इस स्पष्टीकरण से यह पता चलता है कि संज्ञानात्मक शैली का सम्बन्ध शैक्षणिक रुचि, अधिगम शैली और व्यक्ति की शैक्षणिक उपलब्धि से है। इसलिए शिक्षा के क्षेत्र में अपसारी उत्पादन योग्यता के विभिन्न पक्षों पर इसके प्रभाव का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

अपसारी उत्पादन योग्यता का विकास अपसारी चिन्तन के द्वारा होता है। अपसारी चिन्तन में समस्या के यथासम्भव कई समाधानों पर विचार-विमर्श किया जाता है। अपसारी उत्पादन योग्यता में व्यक्ति भिन्न-भिन्न दिशाओं में चिन्तन कर समस्या का समाधान करता है तो स्वाभावत: वह समस्या के कई संभावित उत्तरों पर सोचता है और

अपनी ओर से कुछ नई एवं मूल चीजों को जोड़ने की कोशिश करता है। प्राय: यह देखा गया है कि उच्च स्तरीय सृजनकर्ताओं में उच्चतरीय बुद्धि होती है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि बुद्धिमान व्यक्ति सृजनकर्ता भी हो।

गृह वातावरण से अभिप्राय गृह के परिदृश्य या उन समस्त परिस्थितियों से है, जो परिवारजनों द्वारा उत्पन्न की जाती हैं तथा जिसका सापेक्षिक प्रभाव बालकों की ज्ञानेन्द्रियों पर पड़ता है और बालक अपनी कर्मेन्द्रियों की सहायता से पारिवारिक परिस्थितियों के अनुरूप व्यवहार भी करने लगता है। गृह-वातावरण के सम्बन्ध में शाह ने स्पष्ट किया कि– *''गृह के वे मानवीय तत्व जो बच्चों को चारों ओर से घेरे होते हैं वे गृह वातावरण कहलाते हैं तथा परिवार में सामाजिक, भौतिक और सांवेगिक गुण समाहित हैं और यह सभी एक साथ मिलकर पारिवारिक परिवेश या गृह-वातावरण का निर्माण करते हैं।''* प्रस्तुत अध्ययन में उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के गृह-वातावरण तथा संज्ञानात्मक शैली का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर प्रभाव का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों के गृह-वातावरण का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर प्रभाव का अध्ययन करना।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर की छात्राओं के गृह-वातावरण का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर प्रभाव का अध्ययन करना।
3. उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों के संज्ञानात्मक शैली का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर प्रभाव का अध्ययन करना।
4. उच्चतर माध्यमिक स्तर की छात्राओं के संज्ञानात्मक शैली का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर प्रभाव का अध्ययन करना।

अध्ययन की शोध परिकल्पनाएँ

प्रस्तुत अध्ययन की निम्नलिखित शोध परिकल्पनाएं हैं:

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों के गृह वातावरण का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर सार्थक प्रभाव है।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर की छात्राओं की गृह वातावरण का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर सार्थक प्रभाव है।

3. उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों की संज्ञानात्मक शैली का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर सार्थक प्रभाव है।
4. उच्चतर माध्यमिक स्तर की छात्राओं की संज्ञानात्मक शैली का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर सार्थक प्रभाव है।

अध्ययन की परिसीमाएँ

परिसीमाएं हमारे अध्ययन क्षेत्र को एक निश्चित परिधि के अन्तर्गत सीमित कर देती है।

1. प्रस्तुत लघु-शोध अध्ययन को केवल कानपुर नगर के कल्यानपुर क्षेत्र में उच्चतर माध्यमिक स्तर के कक्षा-11 के विद्यार्थियों तक ही सीमित रखा गया है।
2. प्रस्तुत लघु-शोध अध्ययन को मात्र 100 विद्यार्थियों तक ही सीमित रखा गया है।
3. प्रस्तुत लघु-शोध अध्ययन को विद्यार्थियों के गृह-वातावरण, संज्ञानात्मक शैली व अपसारी उत्पादन योग्यता चरों के अध्ययन तक ही सीमित रखा गया है।
4. विद्यार्थियों के गृह वातावरण का अध्ययन करने के लिए डा. करुणा शंकर मिश्रा द्वारा निर्मित 'होम एन्वाइरोन्मेन्ट इन्वेन्टरी' का प्रयोग किया गया है।
5. संज्ञानात्मक शैली का अध्ययन करने के लिए डा. प्रवीण कुमार झा द्वारा निर्मित 'काग्नेटिव स्टाइल इन्वेन्टरी' का प्रयोग किया गया है।
6. अपसारी उत्पादन योग्यता का अध्ययन करने के लिए डा. के.एन. शर्मा द्वारा निर्मित 'डाइवर्जेन्ट प्रोडक्शन एबिलिटी टेस्ट' का प्रयोग किया गया है।

शोध विधि

शोध विधि का शोध कार्य में महत्व पूर्ण स्थान होता है। शोध विधि का निर्धारण शोध एवं उसके उद्देश्यों पर निर्धारित होता है। प्रस्तुत अध्ययन में उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के गृह-वातावरण तथा संज्ञानात्मक शैली का उनकी अपसारी उत्पादन योग्यता पर प्रभाव का अध्ययन करने के लिए विवरणात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन की जनसंख्या

प्रस्तुत अध्ययन में जनसंख्या के रूप में कानपुर नगर के उच्चतर माध्यमिक स्तर के यू.पी. बोर्ड के समस्त छात्र व छात्राओं को चुना गया था जो कि वर्ष 2013-14 में अध्ययनरत् थे।

अध्ययन का न्यादर्श

प्रस्तुत अध्ययन में साधारण यादृच्छिक न्यादर्शन प्रविधि से 50 छात्र व 50 छात्राओं को न्यादर्श के रूप में लिया था।

प्रयुक्त उपकरणों का विवरण

(अ) गृह वातावरण (H.E.I)

गृह-वातावरण परिसूची का निर्माण डा. करुणा शंकर मिश्रा द्वारा 1983 में किया गया है। उपरोक्त परिसूची में 10 विमायें हैं जो निम्नलिखि हैं– नियंत्रण, सुरक्षा, दण्ड, समरूपता, सामाजिक बहिष्करण, पुरस्कार, विशेषाधिकारों से वंचित रखना, पोषण, अस्वीकार्यता तथा उदार वातावरण, प्रत्येक विमा से 10-10 कथन परिसूची में सम्मिलित किये गये हैं। इस प्रकार कुल 100 कथन परिसूची में हैं। गृह-वातावरण परिसूची की 10 विमाओं पर अर्ध विच्छेद विश्वसनीयता एवं पाठ्यवस्तु वैधता पर्याप्त पाई गई थी।

(ब) संज्ञानात्मक शैली अनुसूची (C.S.I.)

संज्ञानात्मक शैली अनुसूची डॉ. प्रवीण कुमार झा द्वारा निर्मित है। इसका निर्माण डॉ. झा द्वारा 1985 में किया गया था। क्रमबद्ध शैली, अन्तर्ज्ञानात्मक शैली, एकीकृत शैली, अविभेदीकृत शैली तथा विखण्डित शैली से कुल 40 कथनों को शामिल किया गया है। संज्ञानात्मक शैली अनुसूची की अर्ध-विच्छेद विश्वसनीयता 0.653 पायी गयी। अनुसूची की वैधता का निर्धारण करने के लिए अनुसूची के हिन्दी संस्करण की समवर्ती वैधता मार्टिन के 'काग्निटिव स्टाइल इन्वेंटरी' के सापेक्ष ज्ञात की गयी। दोनों के मध्य सह-संबंध गुणांक 0.262 पाया गया।

(स) अपसारी उत्पादन योग्यता (D.P.A.)

अपसारी उत्पादन योग्यता अनुसूची का निर्माण डा. के.एन. शर्मा द्वारा 1971 में किया गया। प्रस्तुत उपकरण में हिन्दी में 6 परीक्षण हैं जिनके द्वारा आठ अपसारी उत्पादन योग्यताओं का मापन किया गया है। टेस्ट बैटरी की परीक्षण पुर्नपरीक्षण विश्वसनीयता एवं पाठ्यवस्तु वैधता पर्याप्त पाई गई थी।

सांख्यिकीय गणना

प्रदत्तों के विश्लेषण के लिए सांख्यिकीय तकनीकों का प्रयोग किया गया है। चरों के मध्य संबंध को देखने के लिए माध्य, मानक विचलन तथा टी-मूल्य को ज्ञात किया गया है।

परिकल्पनाओं का परीक्षण

उद्देश्य-1

उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों के गृह-वातावरण का उनकी अपसारी उत्पादन योग्यता पर प्रभाव का अध्ययन करना।

H_1- उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों के गृह-वातावरण का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर सार्थक प्रभाव है।

H_{O1}- उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों के गृह-वातावरण का सार्थक उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

तालिका-1

उच्चतर माध्यमिक स्तर के सकारात्मक तथा नकारात्मक गृह-वातावरण वाले छात्रों के अपसारी उत्पादन योग्यता से संबंधित मध्यमान, मानक विचलन तथा टी-मान

क्र. सं.	चर	N	M	S.D.	df	t-मान	सार्थकता स्तर
1.	सकारात्मक गृह-वातावरण	8	53.88	11.73	16	1.31	0.05 स्तर पर असार्थक
2.	नकारात्मक गृह-वातावरण	10	65.66	24.17			

तालिका-1 के अवलोकन से पता चलता है कि सकारात्मक गृह-वातावरण के छात्रों का मध्यमान 53.88 तथा प्रमाणिक विचलन 11.73 है। इसी प्रकार नकारात्मक गृह-वातावरण के छात्रों का मध्यमान 65.66 तथा प्रमाणिक विचलन 24.17 है। तालिका से स्पष्ट है कि आकलित टी-मान 1.31 है, जो कि मुक्तांश 16 तथा 0.05 स्तर पर सार्थकता के लिए आवश्यक तालिका टी-मान 2.12 से कम है। अत: यह 0.05 स्तर पर असार्थक है। अत: शून्य परिकल्पना H_{O1} सत्य सिद्ध होती है और शोध परिकल्पना H_1 असत्य सिद्ध होती है। निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि गृह-वातावरण का उनकी अपसारी उत्पादन योग्यता पर सार्थक प्रभाव नहीं है।

उद्देश्य-2

उच्चतर माध्यमिक स्तर की छात्राओं के गृह-वातावरण का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर प्रभाव का अध्ययन करना।

H_2- उच्चतर माध्यमिक स्तर की छात्राओं के गृह-वातावरण का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर सार्थक प्रभाव है।

H_{O2} - उच्चतर माध्यमिक स्तर की छात्राओं के गृह-वातावरण का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

तालिका-2

उच्चतर माध्यमिक स्तर की सकारात्मक तथा नकारात्मक गृह-वातावरण वाली छात्राओं के अपसारी उत्पादन योग्यता से संबंधित मध्यमान, मानक विचलन तथा टी-मान

क्र. सं.	चर	N	M	S.D.	df	t-मान	सार्थकता स्तर
1.	सकारात्मक गृह-वातावरण	10	63.3	15.84	18	0.51	0.05 स्तर पर असार्थक
2.	नकारात्मक गृह-वातावरण	10	67	19.02			

तालिका-2 से स्पष्ट है कि सकारात्मक गृह वातावरण की छात्राओं का मध्यमान 63.3 तथा प्रमाणिक विचलन 15.84 है। इसी प्रकार नकारात्मक गृह वातावरण की छात्राओं का मध्यमान 67 तथा प्रमाणिक विचलन 19.02 है। तालिका से यह भी स्पष्ट है कि आकलित टी-मान 0.51 है जो कि मुक्तांश 18 तथा 0.05 स्तर पर सार्थकता के लिए आवश्यक तालिका टी-मान 2.10 से कम है। अत: यह 0.05 स्तर पर असार्थक है। अत: शोध परिकल्पना H_2 अस्वीकार की जाती है तथा शून्य परिकल्पना H_{O2} स्वीकार की जाती है। निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि गृह-वातावरण का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर सार्थक प्रभाव नहीं है।

उद्देश्य-3

उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों के संज्ञानात्मक शैली का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर प्रभाव का अध्ययन करना।

H_3- उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों की संज्ञानात्मक शैली का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर सार्थक प्रभाव है।

H_{O3}- उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों की संज्ञानात्मक शैली का उनकी अपसारी उत्पादन योग्यता पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

तालिका-3

उच्चतर माध्यमिक स्तर की क्रमबद्ध तथा एकीकृत संज्ञानात्मक शैली वाले छात्रों के अपसारी उत्पादन योग्यता से संबंधित मध्यमान, मानक विचलन तथा टी-मान

क्र. सं.	चर	N	M	S.D.	df	t-मान	सार्थकता स्तर
1.	क्रमबद्ध संज्ञानात्मक शैली	29	63.44	21.32	46	0.82	0.05 स्तर पर असार्थक
2.	एकीकृत संज्ञानात्मक शैली	19	60.73	14.72			

तालिका-3 के अवलोकन से पता चलता है कि क्रमबद्ध संज्ञानात्मक शैली के छात्रों का मध्यमान 63.44 तथा प्रमाणिक विचलन 21.32 है। इसी प्रकार एकीकृत संज्ञानात्मक शैली के छात्रों का मध्यमान 60.73 तथा प्रमाणिक विचलन 14.72 है। तालिका से स्पष्ट है कि आकलित टी-मान 0.82 है जो कि मुक्तांश 46 तथा 0.05 स्तर पर सार्थकता के लिए आवश्यक तालिका टी-मान 2.02 से कम है। अत: यह 0.05 स्तर पर असार्थक है। अत: शोध परिकल्पना संख्या H_3 अस्वीकार की जाती है तथा शून्य परिकल्पना H_{O3} स्वीकार की जाती हैं। निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि संज्ञानात्मक शैली का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर सार्थक प्रभाव नहीं है।

उद्देश्य-4

उच्चतर माध्यमिक स्तर की छात्राओं की संज्ञानात्मक शैली का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर प्रभाव का अध्ययन करना।

H_4- उच्चतर माध्यमिक स्तर की छात्राओं की संज्ञानात्मक शैली का उनकी अपसारी उत्पादन योग्यता पर सार्थक प्रभाव है।

H_{O4}- उच्चतर माध्यमिक स्तर की छात्राओं की संज्ञानात्मक शैली का उनकी अपसारी उत्पादन योग्यता पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

तालिका-4

उच्चतर माध्यमिक स्तर की छात्राओं के क्रमबद्ध तथा एकीकृत संज्ञानात्मक शैली वाली छात्राओं के अपसारी उत्पादन योग्यता से संबंधित मध्यमान, मानक विचलन तथा टी-मान

क्र. सं.	चर	N	M	S.D.	df	t-मान	सार्थकता स्तर
1.	क्रमबद्ध संज्ञानात्मक शैली	31	63.61	21.60	47	1.51	0.05 स्तर पर असार्थक
2.	एकीकृत संज्ञानात्मक शैली	18	58.5	15.41			

तालिका-4 से स्पष्ट है कि क्रमबद्ध संज्ञानात्मक शैली की छात्राओं का मध्यमान 63.61 तथा प्रमाणिक विचलन 21.60 है। इसी प्रकार एकीकृत संज्ञानात्मक शैली की छात्राओं का मध्यमान 58.5 तथा प्रमाणिक विचलन 15.41 है। तालिका से स्पष्ट है कि आकलित टी-मान 1.51 है जो कि मुक्तांश 47 तथा 0.05 स्तर पर सार्थकता के लिए आवश्यक तालिका टी-मान 2.02 से कम है। अत: यह 0.05 स्तर पर असार्थक है। अत: शोध परिकल्पना संख्या H_4 अस्वीकार की जाती है तथा शून्य परिकल्पना H_{O4} स्वीकार की जाती है। निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि संज्ञानात्मक शैली का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर सार्थक प्रभाव नहीं है।

अध्ययन के परिणाम

प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख परिणाम निम्नलिखित हैं:

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों के गृह-वातावरण का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर प्रभाव नहीं है।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर की छात्राओं के गृह-वातावरण का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर प्रभाव नहीं है।
3. उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्रों की संज्ञानात्मक शैली का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर प्रभाव नहीं है।
4. उच्चतर माध्यमिक स्तर की छात्राओं की संज्ञानात्मक शैली का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर प्रभाव नहीं है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन में कानपुर नगर के उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के गृह-वातावरण तथा संज्ञानात्मक शैली का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर प्रभाव का अध्ययन किया गया। अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला कि उच्चतर माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं के गृह-वातावरण तथा संज्ञानात्मक शैली का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर प्रभाव नहीं है।

प्रस्तुत लघु शोध अध्ययन से यह तथ्य सामने आया कि गृह-वातावरण तथा संज्ञानात्मक शैली का अपसारी उत्पादन योग्यता पर प्रभाव नहीं पड़ता है। गृह-वातावरण से तात्पर्य बच्चे के पालन-पोषण तथा माता-पिता का उनके प्रति व्यवहार का बच्चों के शारीरिक, मानसिक, एवं सांवेगिक विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। यदि माता-पिता

का व्यवहार शिशु कल्याण की भावना से ओत-प्रोत होता है तो बालक का विकास भी उचित होता है तथा उसके व्यक्तित्व के गुण उभर कर सामने आते हैं।

संज्ञानात्मक शैली के द्वारा अपने सामने आने वाली समस्याओं के निराकरण हेतु समुचित रूप से विचार करता है ताकि वह समस्या के वास्तविक स्वरूप को समझ सके। तथा अपने पास उपस्थित सूचनाओं को याद करके उनका समस्या के समाधान में प्रयोग कर सके जबकि अपसारी उत्पादन योग्यता से तात्पर्य व्यक्ति में सामान्य से हटकर अलग ढंग से विचार करने की योग्यता से है। किसी भी क्षेत्र में उत्कृष्ट या विशिष्ट कार्य करने के लिए विद्यार्थियों में उचित अपसारी उत्पादन योग्यता का होना अनिवार्य है। अध्ययन में यह स्पष्ट हुआ है कि गृह-वातावरण तथा संज्ञानात्मक शैली का उनके अपसारी उत्पादन योग्यता पर लैंगिक निरपेक्ष प्रभाव नहीं पड़ता है।

संदर्भ

डाइक, एच.ए.; विटकिन एवं अन्य (1962), *साइकोलॉजिकल डिफरेन्सियशेन,* न्यूयार्क : जॉन बिले।

गिलफोर्ड, जे.पी. (1950), *पर्सनालिटी*, न्यूयार्क: एम.सी. ग्राहिल 19.50 (इ) ट्रेट्स ऑफ क्रिएटीविटी ''*इन एण्डर्सन एच.एच. (इड) क्रिएटीविटी इट्स कल्टीवेशन*, न्यूयार्क: हापरि, पृष्ठ संख्या 142-161।

कूप, ए.एच. एण्ड आई.ई. सिंगल (1971), *काग्निटिव स्टाइल: इम्प्लीकेशन्स फार लर्निंग एण्ड इन्स्ट्रक्शन्स साइकोलॉजी इन द स्कूल्स*, पृ.सं. 152-161।

मार्टिन, एल.पी. (1983), *इग्जामिनेशन ऑफ द रिलेशनशिप ऑफ मल्टीडाइमेशनल एनालिटिक काग्निटिव विहैवियर एण्ड मल्टी डाइमेशनल सोशल रोल विहैविर्यस*, अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध, द पेन्निसुल्बामिया स्टेट युनिवर्सिटी, पृष्ठ संख्या-249।

पाण्डेय, के.पी. (2011), *शैक्षिक मापन एवं मूल्यांकन*, वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, देहली।

पाठक, आर. पी. और भारद्वाज, अमिता (2012), *शिक्षा में अनुसंधान एवं सांख्यिकी*, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

राजपूत, जे.एस. (2004), *एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इण्डियन एजुकेशन*, वॉल्यूम 1 एण्ड 2, एन.सी.ई. आर.टी., न्यू देहली।

राय, पारसनाथ (2008), *अनुसंधान परिचय*, आगरा : लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन।

सिंह, अरूण कुमार (2010), *मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ*, दिल्ली : मोती लाल बनारसी दास प्रकाशन।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 23, अंक 1, अप्रैल 2016

शोध टिप्पणी/संवाद

सामान्य एवं आरक्षित वर्ग के विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर तथा शैक्षिक निष्पत्ति की तुलना

सुधीर कुमार* और **स्नेहलता शिवहरे****

सारांश

विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति पर अनेक कारक प्रभाव डालते है यथा परिवार, विद्यालय, सामाजिक वातावरण, शारीरिक क्षमताएँ, रुचि तथा आकांक्षा स्तर आदि। पूर्व में किये गये शोध के परिणामों से यह सिद्ध हो चुका है कि शैक्षिक निष्पति को आकांक्षा स्तर तुलनात्मक रूप से अधिक प्रभावित करता है। प्रस्तुत अध्ययन में यह जानने का प्रयास किया गया है कि सामान्य एवं आरक्षित वर्ग के छात्र-छात्राओं का आकांक्षा स्तर शैक्षिक निष्पत्ति को किस प्रकार प्रभावित करता है, सामान्य एवं आरक्षित वर्ग के विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर व शैक्षिक निष्पत्ति में क्या अन्तर है, जिससे उच्च शैक्षिक निष्पत्ति प्राप्त करने के लिए छात्रों को प्रोत्साहित किया जा सके। इसी प्रकार छात्र-छात्राओं की रुचि, आवश्यकताओं, आकांक्षा स्तर तथा योग्यताओं को ध्यान में रखते हुए उन्हें प्रोत्साहित किया जा सके। विद्यालय में स्वस्थ वातावरण प्रदान करना जिससे छात्र अपनी क्षमता के अनुसार शैक्षिक निष्पत्ति को प्राप्त कर सके। अतः आलेख के मुख्य उद्देश्य है: आरक्षित तथा सामान्य वर्ग के विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर तथा शैक्षिक निष्पत्ति में अन्तर को समाप्त करने हेतु विद्यालय में प्रयास करना; विभिन्न पाठ्य- सहगामी क्रियाओं के माध्यम से सफलता-असफलता के आधार पर अपनी क्षमताओं तथा आकांक्षा स्तर का मूल्यांकन

---

*सहायक प्रोफेसर (शिक्षा संकाय) महाराणा प्रताप राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हरदोई, उ.प्र.
**पी-एच.डी. (समाजशास्त्र), जे.आर.एफ. (शिक्षाशास्त्र)

कर उसका उचित विकास करना तथा निम्न शैक्षिक निष्पत्ति विद्यार्थियों को प्रोत्साहित कर उनके स्तर में सुधार करना।

प्रस्तावना

प्रत्येक समाज के कुछ मूल्य व मान्यताएँ होती हैं जिन्हें वह सुरक्षित रखना चाहता है और आगामी पीढ़ी को हस्तान्तरित करना चाहता है। शिक्षा ही वह साधन है, जिसका प्रयोग कर समाज अपनी संस्कृति व सभ्यता का संरक्षण, विकास तथा हस्तान्तरण करता है। शिक्षा मनुष्य को सुसंस्कृत बनाती है तथा संवेदनशीलता व दृष्टि को प्रशस्त करती है। शिक्षा हमारे भौतिक व आध्यात्मिक विकास का एक आवश्यक साधन है। यही कारण है कि मानव इतिहास के आदिकाल से ही शिक्षा अपनी पहुँच व आवरण बनाती रही है। शिक्षा बालक के व्यवहार को परिमार्जित करती है, और वांछित व्यवहार परिमार्जन ही शिक्षा है। शिक्षा बालक की अन्तर्निहित क्षमताओं का उचित विकास करती है। शिक्षा मानव समाज की सतत प्रक्रिया एवं विकास की आधारशिला है। मानव को अपने परिवेश, पर्यावरण तथा समाज को समझने के लिए शिक्षा की आवश्यकता होगी। इस प्रकार विकास के लिए तथा व्यक्ति के व्यक्तिव के सम्पूर्ण प्रस्तुतीकरण के लिए यह परम आवश्यक है।

व्यक्ति अपने जीवन में अनेक प्रकार का ज्ञान तथा कौशल प्राप्त करता है। इस ज्ञान तथा कौशल में व्यक्ति ने कितनी दक्षता प्राप्त की है, इसका पता उस ज्ञान व कौशलों की उपलब्धि परीक्षा से चलता है। विद्यालयों की विभिन्न कक्षाओं में अनेक प्रकार के छात्र शिक्षा ग्रहण करते हैं। समान मानसिक योग्यता न होने के कारण वह एक ही समयावधि में एक ही विषय में भिन्न-भिन्न योग्यताएँ प्राप्त करते हैं। उनकी इसी प्रगति एवं उपलब्धि का मापन ज्ञात करने के लिए निष्पत्ति परीक्षाएँ ली जाती हैं। शैक्षिक निष्पत्ति पर अनेक कारक प्रभाव डालते हैं, घर, परिवार, विद्यालय, सामाजिक वातावरण का सीधा संबंध छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति पर पड़ता है। व्यक्ति की शारीरिक क्षमताओं व रुचियों का प्रभाव भी शैक्षिक निष्पत्ति पर पड़ता है। व्यक्ति का आकांक्षा स्तर भी शैक्षिक निष्पत्ति को प्रभावित करता है, व्यक्ति संचेतन अवस्था में अपने व्यवहार को विभिन्न प्रकार से निर्देशित करता है और कई प्रकार के क्रिया-कलापों के प्रति प्रेरित होता है ताकि वह अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर सके। व्यक्ति को अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आकांक्षा स्तर उसे एक आधार प्रदान करता है। चूँकि आकांक्षा स्तर व्यक्ति केन्द्रित पक्ष होता है। इसलिए व्यक्ति अपनी आकांक्षा स्तरों को अपनी सामर्थ्य के

अनुसार तय करता है। कभी-कभी वह इतने ऊँचे आकांक्षा स्तर निर्धारित कर लेता है कि इन्हें प्राप्त करने में वह असफल भी हो सकता है।

विद्यालय में भिन्न-भिन्न धर्म, लिंग एवं सामाजिक वर्ग के छात्र शिक्षा ग्रहण करते हैं। यूँ तो विद्यालयों में पढ़ने वाले सभी छात्र समान से दिखाई देते हैं, किन्तु सूक्ष्म रूप से प्रत्येक छात्र एक दूसरे से अवयव व अनुभूति दोनों दृष्टि से सर्वथा भिन्न है। प्रत्येक छात्र अपने को विश्वरूपी क्रीड़ा क्षेत्र में सशक्त अभिनेता के रूप में साकार करना चाहता है। यदि मौलिकता एवं नवीनता की भावना उसमें इच्छाओं को जन्म देती है जो उसकी उन्नति की उत्तम सीमा में पहुँचने में सहायक होगी। शिक्षा जीवन को व्यवहारिक धरातल प्रदान करती है और आम आदमी के जीवन की सच्चाइयों को उजागर करती है। आम आदमी का प्रसंग आते ही देश में सदियों से उपेक्षित और शोषित अनुसूचित जाति, पिछड़ी जाति एवं अनुसूचित जनजाति की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है, जिसने जाति भेद की समस्या को जन्म दिया है। अनुसूचित जाति/जनजाति एवं पिछड़ा वर्ग पहले राजाओं, महाराजाओं से शोषित रहे हैं, फिर साहूकारों द्वारा ठगे गये हैं या हमेशा इन्हें विकास के द्वार से धकेल दिया गया है। गहरे अतीत में कभी इनके लिए कोई विद्यालय नहीं रहा, इतिहास के किसी युग ने इन्हें स्याही और कलम हाथ में नहीं लेने दी, हुआ यह कि इनकी निरक्षरता के कारण इनका शोषण होने लगा, इनकी तबाही उच्च वर्ग की समृद्धि थी और इसी भाँति आरक्षित वर्ग का शोषण सामान्य समाज करता रहा है। आज जब आरक्षित वर्ग सामान्य वर्ग के सम्पर्क में आता है, इनके परस्पर संबंधों में एक ऐतिहासिक पूर्वाग्रह बराबर देखने को मिलता है। शिक्षा की व्यवस्था समाज द्वारा की जाती है जो समाज के मूल्य, मान्यता तथा आवश्यकताएँ होती हैं। उन्हीं के परिप्रेक्ष्य में वह समान शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित करता है। अतः समाज के वातावरण का छात्रों की शैक्षिक निष्पत्ति पर प्रभाव पड़ता है। आज शिक्षा एवं सेवा की दृष्टि से छात्र दो वर्गों - सामान्य वर्ग व आरक्षित वर्ग में विभाजित है। सामान्यतः ऐसा देखा गया है कि सामान्य वर्ग आरक्षित वर्ग को उपेक्षा की दृष्टि से देखता है, उन्हें अपने से नीचे स्तर का समझता है। इस भेदभाव के परिणामस्वरूप आरक्षित वर्ग के छात्रों के मस्तिष्क में कुण्ठित भावनायें जन्म ले लेती हैं जो उनकी शैक्षिक निष्पत्ति एवं आकांक्षा स्तर पर प्रभाव डालती है।

हमारे देश में विभिन्न जाति, धर्म और मूल्य मान्यताओं को मानने वाले लोग रहते हैं, परन्तु आज शिक्षा व सेवा की दृष्टि से समाज दो वर्गों में बँट गया है, एक सामान्य वर्ग और दूसरा आरक्षित वर्ग। आरक्षित वर्ग में उन व्यक्तियों को रखा गया है जिन्हें केन्द्र या

सरकार ने आरक्षण प्रदान किया है। आरक्षित वर्ग में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति व अन्य पिछड़ी जातियाँ सम्मिलित हैं। इनको आरक्षण प्रदान करने के कई कारण हैं जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं:

- आर्थिक पिछड़ापन
- अशिक्षा
- सामाजिक असमानता
- राजनैतिक शक्ति का अभाव
- सरकारी सेवाओं में अपर्याप्त प्रतिनिधित्व

उपरोक्त घटकों का प्रभाव व्यक्ति की आकांक्षा स्तर एवं शैक्षिक निष्पत्ति पर पड़ सकता है। क्या वास्तव में इन सभी घटकों का प्रभाव आकांक्षा स्तर एवं शैक्षिक निष्पत्ति पर पड़ता है। शोधार्थी ने अपनी इस जिज्ञासा की सन्तुष्टि के परिप्रेक्ष्य में ही ''सामान्य वर्ग एवं आरक्षित वर्ग की विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर तथा शैक्षिक निष्पत्ति का तुलनात्मक अध्ययन' समस्या का चयन किया है।

अध्ययन की सार्थकता

- आरक्षित वर्ग की स्नातक स्तर की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर का आकलन किया जा सकेगा।
- आरक्षित वर्ग की स्नातक स्तर की छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति का आकलन किया जा सकेगा।
- अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर छात्र-छात्राओं अपने आकांक्षा स्तर एवं शैक्षिक निष्पत्ति में समन्वय स्थापित करने में समर्थ होगी।
- शिक्षक छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर व शैक्षिक निष्पत्ति को ऊँचा उठाने के लिए उचित प्रेरणा व परिवर्तन दे सकेंगे।
- छात्र-छात्राओं के निषेधात्मक गुणों की पहचान की जा सकेगी तथा उनके हटाने के उपाय ढूँढे जा सकेंगे।
- उच्च व निम्न आकांक्षा स्तर वाली छात्र-छात्राएं समन्वय स्थापित कर सकेंगी।

समस्या कथन

सामान्य एवं आरक्षित वर्ग के छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर एवं शैक्षिक निष्पत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।

अध्ययन में प्रयुक्त शब्दों का पारिभाषीकरण

सामान्य वर्ग

वर्तमान अध्ययन में सामान्य वर्ग से आशय उस वर्ग से है, जिन्हें केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार ने शिक्षा तथा सेवा में आरक्षण श्रेणी के अन्तर्गत नहीं रखा है। मण्डल आयोग के दृष्टिकोण से ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य सामान्य वर्ग के अन्तर्गत आते हैं।

आरक्षित वर्ग

भारतीय परिप्रेक्ष्य में आरक्षित वर्ग के अन्तर्गत निम्न वर्ग के व्यक्ति आते हैं–

- अनुसूचित जाति
- अनुसूचित जनजाति
- अन्य पिछड़ी जातियां
- विकलांग समूह
- भूतपूर्व सेना विभाग के कर्मचारी के परिजन आदि।

आकांक्षा स्तर

प्रत्येक व्यक्ति अपने कुछ–न–कुछ लक्ष्य निर्धारित करता है जिन्हें वह प्राप्त करना चाहता है या प्राप्त करने की लालसा रखता है। यह आवश्यक नहीं होता है कि जो व्यक्ति आकांक्षा स्तर निर्धारित करता है वह उन्हें प्राप्त ही कर ले। वह असफल भी हो सकता है। लक्ष्यों का निरूपण कई प्रयोगों द्वारा निरूपित हुआ है। इन प्रयोगों में आकांक्षा स्तर एक पूर्ण परिभाषित लक्ष्य को निरूपित करते हैं जो व्यक्ति को पहुँच के अन्तर्गत होता है। व्यक्ति सदैव उच्च लक्ष्य निर्धारित करता है। इसलिए वह लक्ष्य को प्राप्त करने में कभी–कभी असफल हो जाता है।

शैक्षिक निष्पत्ति

व्यक्ति अपने जीवन में अनेक प्रकार का ज्ञान तथा कौशल प्राप्त करता है। इस ज्ञान व कौशल में व्यक्ति ने कितनी दक्षता प्राप्त की है, इसकी जानकारी उस ज्ञान तथा कौशल की उपलब्धि या निष्पत्ति परीक्षण से प्राप्त होती है।

ट्रायलर (1981) के अनुसार– *''शैक्षिक निष्पत्ति वार्षिक परीक्षा में विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त अंकों का समग्र योग होता है। शैक्षिक उपलब्धि किसी प्रमाणीकृत उपलब्धि परीक्षण पर व्यक्ति के प्राप्तांकों को बताती है।''*

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शैक्षिक निष्पत्ति से आशय है कि बालिका के स्कूल स्तर पर प्रमाणीकृत वार्षिकांकों का प्रतिशत क्या है। बालिका ने कुल योग में जितने अंक

अर्जित किये हैं, उसका प्रतिशत निष्पत्ति है। प्रस्तुत शोध में इण्टर की तालिका का प्रयोग किया गया है।

स्नातक स्तर

इण्टरमीडिएट अथवा 10+2 के पश्चात विश्वविद्यालय स्तर की प्रथम उपाधि यथा बी.ए., बी.कॉम., बी.एस-सी. से है।

अध्ययन के उद्देश्य

(1) स्नातक स्तर की आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर का अध्ययन करना।

(2) स्नातक स्तर की सामान्य वर्ग की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर का अध्ययन।

(3) स्नातक स्तर की आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति का अध्ययन करना।

(4) स्नातक स्तर की सामान्य वर्ग की छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति का अध्ययन करना।

(5) स्नातक स्तर की आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर एवं शैक्षिक निष्पत्ति में सह-संबंधात्मक अध्ययन करना।

(6) स्नातक स्तर की सामान्य वर्ग की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर एवं शैक्षिक निष्पत्ति में सह-संबंधात्मक अध्ययन करना।

(7) स्नातक स्तर की सामान्य व आरक्षित वर्ग की विज्ञान संकाय की छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।

(8) स्नातक स्तर की सामान्य व आरक्षित वर्ग की विज्ञान संकाय की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना।

(9) स्नातक स्तर की सामान्य व आरक्षित वर्ग की कला संकाय की छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।

(10) स्नातक स्तर की सामान्य व आरक्षित वर्ग की कला संकाय की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना।

समस्या का सीमांकन

शोधार्थी ने प्रस्तुत शोध अध्ययन में नेशनल डिग्री कॉलेज भोगाँव, मैनपुरी तथा श्री चित्रगुप्त महाविद्यालय, मैनपुरी के विज्ञान और कला संकाय के प्रथम वर्ष में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं तक ही सीमित रखा है।

प्रतिदर्श के रूप में सामान्य वर्ग तथा आरक्षित वर्ग (अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पिछड़ी जाति) को सम्मिलित किया गया है।

अध्ययन की परिकल्पना

1. सामान्य वर्ग एवं आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं को आकांक्षा स्तर में सार्थक अन्तर नहीं आयेगा।
2. सामान्य वर्ग एवं आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति में सार्थक अन्तर नहीं आयेगा।
3. छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर एवं शैक्षिक निष्पत्ति में सह संबंध नहीं आयेगा।

अध्ययन की विधि

प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक शोध की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन का न्यादर्श

अध्ययन में न्यादर्श का चयन नेशनल डिग्री कॉलेज भोगाँव, मैनपुरी व श्री चित्रगुप्त महाविद्यालय, मैनपुरी में स्नातक स्तर के वर्ष में अध्ययनरत विज्ञान तथा कला संकाय की सामान्य वर्ग एवं आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं को लिया गया है। विवरण निम्न प्रकार है–

तालिका -1

संकाय	सामान्य वर्ग	आरक्षित वर्ग	योग
विज्ञान	25	25	50
कला	25	25	50
योग	50	50	100

अध्ययन में प्रयोग किये गये उपकरण

(1) महेश भार्गव और एम.ए. शाह के आकांक्षा स्तर मापनी का प्रयोग किया गया।

(2) स्नातक स्तर के प्रथम वर्ष में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं की इण्टर की अंक तालिका में दिये गये संचयी प्रतिशत को निष्पत्ति के रूप में प्रयोग किया गया है।

अध्ययन में प्रयोग की गयी सांख्यिकीय प्रविधियाँ

- मध्यमान
- मानक विचलन

- क्रान्तिक अनुपात
- सह-संबंध गुणांक

आरक्षित वर्ग के आकांक्षा स्तर का अध्ययन

अध्ययन का प्रथम उद्देश्य आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर का अध्ययन करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु शाह एवं भार्गव की आकांक्षा स्तर मापनी का प्रयोग करके प्रदत्तों को संकलित किया गया तथा संकलित प्रदत्तों को सार्थक रूप प्रदान करने के लिए छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तरों का मध्यमान व मानक विचलन तथा विभिन्न वर्गों में आने वाली छात्र-छात्राओं का प्रतिशत ज्ञात किया गया है।

तालिका-2

आकांक्षा स्तर	वर्गीकरण का आधार M ± S.D.	मध्यमान	मानक विचलन	छात्र-छात्राओं का प्रतिशत
उच्च	4.8 से ऊपर			16%
औसत	4.8 से -0.96 के मध्य	-1.92	2.88	66%
निम्न	-0.96 से नीचे			18%

तालिका-2 में वर्णित आँकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि न्यादर्श में सम्मिलित आरक्षित वर्ग की 16% छात्र-छात्राओं का आकांक्षा स्तर उच्च है। जिससे यह ज्ञात होता है कि 16% छात्र-छात्राएं ही अपने भविष्य के प्रति उच्च आकांक्षा रखते हैं तथा जीवन के महत्वपूर्ण कार्य करने, सफलता पाने का निश्चय भी प्रदर्शित करती हैं। अर्थात जीवन के प्रति धनात्मक दृष्टिकोण रखती हैं। 66% छात्र-छात्राएं ऐसी हैं जो सामान्य आकांक्षा स्तर की है तथा जीवन प्रत्याशाओं के प्रति सामान्य दृष्टिकोण रखती हैं। इनका दृष्टिकोण वास्तविक है जो अपनी क्षमताओं के प्रति अनभिज्ञ नहीं है। समूह की 18% छात्र-छात्राएँ ऐसी हैं जिनका आकांक्षा स्तर औसत से कम है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ये छात्र-छात्राएँ किसी लक्ष्य को निर्धारित करने में संकोच प्रकट करती हैं। अर्थात ये छात्र-छात्राएँ अपनी क्षमताओं के अनुरूप अपने आकांक्षा स्तर को निर्धारित नहीं करती हैं। ये छात्र-छात्राएँ कार्य करने की क्षमता तो रखती हैं, परन्तु ये आत्मविश्वासी कम होती हैं।

आरक्षित वर्ग की छात्राओं का आकांक्षा स्तर उपलब्धि भिन्नता प्राप्तांक के अनुसार

प्रथम उद्देश्य की प्राप्ति हेतु आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर की गणना उपलब्धि भिन्नता प्राप्तांक (ए.डी.एस.) के अनुसार भी ज्ञात की गयी है जिसका विवरण तालिका-3 में प्रदर्शित है तथा नीचे रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

तालिका-3

आकांक्षा स्तर	वर्गीकरण का आधार M ± S.D.	मध्यमान	मानक विचलन	छात्र-छात्राओं का प्रतिशत
निम्न	+1.93 से ऊपर			20%
औसत	-3.91 से +1.93 तक	-0.99	2.92	64%
उच्च	-3.91 से नीचे			16%

तालिका-3 के अवलोकन से स्पष्ट है कि आरक्षित वर्ग का उपलब्धि भिन्नता प्राप्तांक (ए.डी.एस.) का मानक मध्यमान (-0.99) तथा मानक विचलन 2.92 है जो यह स्पष्ट करता है कि छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर में अत्यधिक विचलनशीलता है। समूह में 20% छात्र-छात्राएँ निम्न आकांक्षा स्तर की हैं। इन छात्र-छात्राओं में लक्ष्य भिन्नता अधिक पायी गयी। इससे यह आशय है कि ये छात्र-छात्राएं जो लक्ष्य निर्धारित करती हैं उन्हें आसानी से प्राप्त कर लेती हैं तथा अपने बारे में कम आकलन करती हैं। समूह में 64% छात्र-छात्राएं ऐसी पायी गयी हैं जिनका लक्ष्य भिन्नता प्राप्तांक (ए.डी.एस.) औसत है जिससे यह आशय निकलता है कि छात्र-छात्राएं निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने में औसत हैं तथा ये छात्र-छात्राएं संकोची स्वाभाव की होती हैं, ये छात्र-छात्राएं यथार्थवादी होती हैं। समूह की 16% छात्र-छात्राएं उच्च आकांक्षा स्तर वाली हैं जो अपने लक्ष्यों का निर्धारण अचेतन अवस्था में करती हैं, जो दिवास्वपनी होती हैं। अर्थात ये छात्र-छात्राएं अपने द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में असमर्थ पायी गयीं।

सामान्य वर्ग की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर का अध्ययन

अध्ययन के द्वितीय उद्देश्य की पूर्ति हेतु सामान्य वर्ग की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर को ज्ञात किया गया है जिसका विवरण निम्नवत है:

तालिका-4

आकांक्षा स्तर	वर्गीकरण का आधार M ± S.D.	मध्यमान	मानक विचलन	छात्र-छात्राओं का प्रतिशत
उच्च	4.8 से ऊपर			12%
औसत	-9.6 से +4.8 तक	+1.92	2.88	74%
निम्न	-9.6 से नीचे			14%

तालिका-4 से स्पष्ट है कि सामान्य वर्ग की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर में पर्याप्त विचरणशीलता है। 12% छात्र-छात्राएँ अपनी योग्यता से उच्च निरुपित करती हैं। 74% छात्र-छात्राएँ ऐसी हैं जिनका आकांक्षा स्तर औसत है। अर्थात् ये छात्र-छात्राएँ जितना कर सकती हैं वह उसी स्तर का आकांक्षा स्तर निर्धारित करती हैं। समूह की 14% छात्र-छात्राएँ ऐसी हैं जो निम्न आकांक्षा स्तर की हैं। अर्थात ये संकोची योग्यता की तुलना में कम निर्धारित करती हैं। ये छात्र-छात्राएँ अपने आपका उचित मूल्यांकन नहीं कर पाती हैं।

सामान्य वर्ग की छात्र-छात्राओं का उपलब्ध भिन्नता प्राप्तांक (ए.डी.एस.) के अनुसार आकांक्षा स्तर

आकांक्षा स्तर के द्वितीय उद्देश्य की प्राप्ति के लिये सामान्य वर्ग के छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर के अध्ययन उपलब्धि में भिन्नता प्राप्तांक (ए.डी.एस.) के आधार पर भी किया जा सकता है। इसका विवरण तालिका-5 में दिया गया है।

तालिका-5

आकांक्षा स्तर	वर्गीकरण का आधार M ± S.D.	मध्यमान	मानक विचलन	छात्र-छात्राओं का प्रतिशत
निम्न	+193 से ऊपर			16%
औसत	-3.91 से + 1.93 तक	-0.99	2.92	70%
उच्च	-3.91 से नीचे			14%

तालिका-5 से स्पष्ट है कि सामान्य वर्ग की छात्र-छात्राओं का उपलब्धि भिन्नता प्राप्तांक (ए.डी.एस.) के आधार पर आकांक्षा स्तर में पर्याप्त विचरणशीलता दृष्टिगोचर होती है। समूह में 16% छात्र-छात्राएँ निम्न आकांक्षा वाली हैं जो अपनी समार्थ्य से कम अपने लक्ष्य निर्धारित करती हैं तथा उन्हें प्राप्त करने में पूर्ण सफल होती हैं। समूह की 70% छात्र-छात्राएँ ऐसी हैं जिनका आकांक्षा स्तर औसत है जो अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में अनुपात में आकांक्षा स्तर का निर्धारण करती हैं। ये छात्र-छात्राएँ यथार्थवादी होती हैं। समूह में 14% छात्र-छात्राएँ उच्च आकांक्षा स्तर वाली हैं जो अपने लक्ष्य को अचेतन अवस्था में निर्धारित करती हैं। ये छात्र-छात्राएँ दिवास्वपनी

होती है। तथा ये छात्र-छात्राएँ अपने द्वारा निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने में असमर्थ होती हैं और यथार्थवादी होती हैं।

आरिक्षत वर्ग की छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति का अध्ययन

अध्ययन में आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति का अध्ययन किया गया है जिसके लिए उनकी इण्टरमीडिएट की अंक तालिकाओं में प्राप्त कुल अंकों का प्रतिशत लिया गया है तथा उन्हें तीन श्रेणियों में बाँटा गया है। उच्च, औसत व निम्न वर्ग। आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति का मध्यमान एवं मानक विचलन निम्न प्रकार है: 66.2%, 7.27 आकडों को तालिका-6 द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

तालिका-6

शैक्षिक निष्पत्ति	वर्गीकरण का आधार M ± S.D.	मध्यमान	मानक विचलन	छात्र-छात्राओं का प्रतिशत
उच्च	73.47 से ऊपर			16%
औसत	58.93 से 73.47 तक	66.2%	7.27	70%
निम्न	58.93 से कम			14%

तालिका-6 के अवलोकन से स्पष्ट है कि आरक्षित वर्ग की 16% छात्र-छात्राएँ ऐसी हैं जो उच्च शैक्षिक निष्पत्ति वाली हैं। 70% छात्र-छात्राएँ ऐसी हैं जिनकी शैक्षिक निष्पत्ति सामान्य थी। 14% छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति सामान्य थी। आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं के प्राप्तांकों का मध्यमान 61.2% है जो औसत प्राप्तांकों का घोतक है। इस वर्ग की छात्र-छात्राओं के प्राप्तांकों का मानक विचलन 7.27 है जो यह बताता है कि छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति में पर्याप्त विचरणशीलता है।

सामान्य वर्ग की छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति का अध्ययन

अध्ययन के इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए छात्र-छात्राओं की अंकतालिका के अनुसार छात्र-छात्राओं के अंकों का मध्यमान 61.9% तथा प्रमाप विचलन 5.04 है। आंकड़ों को तालिका-7 में दिखाया गया है।

तालिका-7

शैक्षिक निष्पत्ति	वर्गीकरण का आधार M ± S.D.	मध्यमान	मानक विचलन	छात्र-छात्राओं का प्रतिशत
उच्च	71.94 से ऊपर			20%
औसत	61.86 से 71.94 तक	66.9%	5.04	66%
निम्न	61.86 से नीचे			14%

सामान्य वर्ग की छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति की उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि समान्य वर्ग की कुल छात्राओं में से 20% छात्र-छात्राएँ उच्च शैक्षिक निष्पत्ति प्राप्त करने वाली हैं। जिन्होंने 66.96 से अधिक अंक प्राप्त किये। समूह की 66% छात्र-छात्राएँ ऐसी हैं जिन्होंने औसत अंक (अर्थात 56.86 तथा 66.94 के मध्य) प्राप्त किये हैं जो औसत शैक्षिक निष्पत्ति वाली हैं। 14% छात्र-छात्राएँ निम्न शैक्षिक निष्पत्ति प्राप्त हैं जिन्होंने 56.86% से कम अंक अर्जित किये हैं।

आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर एवं शैक्षिक निष्पत्ति में सह-संबंध

आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं का आकांक्षा स्तर तथा शैक्षिक निष्पत्ति का पृथक-पृथक अध्ययन करने के पश्चात छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति व आकांक्षा स्तर के मध्य आपसी सह-संबंध को जानने का प्रयास किया गया है जिसके लिए विभिन्न चरों के मध्य सह-संबंध गुणांक की गणना की गयी, निष्कर्षात्मक सांख्यिकीय मानों को तालिका-8 में प्रदर्शित किया गया है:

तालिका-8

चर	मध्यमान	मानक विचलन	सह संबंध गुणांक
आकांक्षा स्तर	1.93	2.96	+0.3
शैक्षिक निष्पत्ति	66.2	7.27	

तालिका-8 के अवलोकन से स्पष्ट है कि आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर व शैक्षिक निष्पत्ति के मध्य संबंध को स्पष्ट कर रहे हैं। उक्त दोनों चरों के निम्न धनात्मक सह संबंध (+3.0) पाया गया, जिससे स्पष्ट होता है आरक्षित वर्ग की

छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर तथा शैक्षिक निष्पत्ति के मध्य निम्न धनात्मक सह संबंध पाया गया है। अर्थात उच्च शैक्षिक निष्पत्ति वाली छात्र-छात्राओं का आकांक्षा स्तर भी (निम्न रूप में) उच्च होगा तथा निम्न शैक्षिक निष्पत्ति वाली छात्राओं का आकांक्षा स्तर भी (निम्न रूप में) निम्न होगा। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आरक्षित वर्ग की उच्च आकांक्षा स्तर वाली छात्र-छात्राओं द्वारा उस स्तर पर पहुँचने के लिए कुछ सीमा तक सार्थक प्रयास किये जाते हैं।

सामान्य वर्ग की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर एवं शैक्षिक निष्पत्ति में सह-संबंध

सामान्य वर्ग की छात्राओं के आकांक्षा स्तर एवं शैक्षिक निष्पत्ति के पृथक-पृथक अध्ययन करने के पश्चात छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति व आकांक्षा स्तर के मध्य आपसी सह-संबंध को जानने के लिए सह-संबंध की गणना की गयी जो निम्न प्रकार है:

तालिका-9

चर	मध्यमान	मानक विचलन	सह-संबंध गुणांक
आकांक्षा स्तर	1.91	2.81	-0.12
शैक्षिक निष्पत्ति	66.9	5.04	

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि सामान्य वर्ग की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर तथा शैक्षिक निष्पत्ति में निम्न स्तरीय ऋणात्मक सह-संबंध (-0.12) प्राप्त हुआ। निम्न स्तरीय ऋणात्मक सह-संबंध से तात्पर्य है कि आकांक्षा स्तर एवं शैक्षिक निष्पत्ति में सार्थक सह-संबंध नहीं है। शैक्षिक निष्पत्ति आकांक्षा स्तर पर तथा आकांक्षा स्तर शैक्षिक निष्पत्ति पर नगण्य प्रभाव डालती है। इसका कारण उच्च आकांक्षा स्तर वाले छात्र-छात्राओं द्वारा भी अपने आकांक्षा स्तर को प्राप्त करने के लिये सार्थक प्रयास न किया जाना है।

सामान्य व आरक्षित वर्ग की विज्ञान संकाय की छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति का तुलनात्मक अध्ययन

विज्ञान संकाय के दोनों वर्गों के अलग-अलग शैक्षिक निष्पत्ति का अध्ययन करने के पश्चात सामान्य व आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति का तुलनात्मक अध्ययन किया। इसके अध्ययन हेतु इण्टरमीडिएट की छात्र-छात्राओं के अंकों का प्रतिशत लिया और उनको तालिकाबद्ध कर सांख्यिकीय गणनाओं के आधार पर विश्लेषण योग्य बनाया जिसे तालिका-10 में दिखाया गया है।

तालिका-10

समूह	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि	t अनुपात	सार्थकता स्तर
सामान्य वर्ग आरक्षित वर्ग	68.33 70.45	5.18 6.02	1.82	1.46	0.05 स्तर पर असार्थक

तालिका-10 से स्पष्ट है कि विज्ञान संकाय के सामान्य व आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति के मध्य t 1.46 प्राप्त हुआ जो कि 0.05 विश्वास स्तर पर असार्थक प्राप्त हुआ है। अत: कहा जा सकता है कि दोनों वर्गों की छात्र-छात्राओं के शैक्षिक निष्पत्ति के मध्यमानों के मध्य अन्तर सार्थक नहीं है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सामान्य वर्ग की छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति से सार्थक रूप से उच्च नहीं है।

सामान्य व आरक्षित वर्ग की विज्ञान संकाय की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना

विज्ञान संकाय के दोनों वर्गों के अलग-अलग आकांक्षा स्तर का अध्ययन करने के पश्चात विज्ञान संकाय की सामान्य व आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन किया। आकांक्षा स्तर मापनी द्वारा प्रदत्त एकत्रित किये जिनको तालिकाबद्ध करके सांख्यिकीय गणनाओं के आधार पर विश्लेषण योग्य बनाया गया। आकांक्षा स्तर के प्रदत्तों से दोनों वर्गों के आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करने हेतु मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, क्रान्तिक अनुपात की गणना की गई जिसे तालिका-11 में दिखाया गया है:

तालिका-11

समूह	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि	t अनुपात	सार्थकता स्तर
सामान्य वर्ग आरक्षित वर्ग	1.84 3.06	2.81 3.5	1.82	1.15	0.05 स्तर पर असार्थक

तालिका-11 के अवलोकन से स्पष्ट है कि विज्ञान संकाय की सामान्य व आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर का t अनुपात 1.15 प्राप्त हुआ जो तालिका के

अनुसार 38df के लिए तालिका मूल्य d.f. 05 = 2.02 से कम है। इस कारण दोनों वर्गों की छात्र-छात्राओं के मध्य अन्तर सार्थक नहीं है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सामान्य व आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर के मध्यमानों में जो अन्तर दिखाई दे रहा है वह 0.5 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है। अत: सामान्य आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं का आकांक्षा स्तर आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर से सार्थक रूप से उच्च नहीं है।

सामान्य व आरक्षित वर्ग की कला संकाय की छात्र-छात्राओं के शैक्षिक निष्पत्ति का तुलनात्मक अध्ययन

इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु इण्टरमीडिएट स्तर की कला संकाय की सामान्य व आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं के अंकों के योग का प्रतिशत लिया गया और उनको एकत्रित किया तथा उनको तालिकाबद्ध कर सांख्यिकीय गणनाओं के आधार पर विश्लेषण योग्य बनाया गया जिन्हें तालिका-12 में दिखाया गया है:

तालिका-12

छात्र समूह	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि	t अनुपात	सार्थकता स्तर
सामान्य वर्ग आरक्षित वर्ग	65.93 63.25	4.72 6.45	1.46	1.84	0.05 स्तर पर असार्थक

तालिका-12 से स्पष्ट है कि कला संकाय के सामान्य व आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति के मध्य t अनुपात 1.84 प्राप्त हुआ है। जो 58df .05 पर तालिका मान 2.00 से कम है। अत: दोनों वर्गों के मध्य अन्तर सार्थक नहीं है। अत: निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सामान्य व आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं (कला संकायों) के शैक्षिक निष्पत्ति आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति से सार्थक रूप से उच्च नहीं है।

सामान्य व आरक्षित वर्ग की कला संकाय की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन

कला संकाय के अलग-अलग आकांक्षा स्तर का अध्ययन करने के पश्चात सामान्य व आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन किया गया।

प्राप्त आंकड़ों को तालिकाबद्ध कर सांख्यिकीय गणनाओं के आधार पर विश्लेषण योग्य बनाया गया। आकांक्षा स्तर के प्रदत्तों से दोनों वर्गों के आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करने हेतु मध्यमान, मानक विचलन, t अनुपात की गणना की गयी जिन्हें तालिका-13 में दिखाया गया:

तालिका-13

छात्र समूह	मध्यमान	मानक विचलन	मानक त्रुटि	t अनुपात	सार्थकता स्तर
सामान्य वर्ग	1.64	2.73	0.633	0.82	0.05 स्तर पर असार्थक
आरक्षित वर्ग	1.12	2.14			

तालिका-13 को देखने से स्पष्ट है कि कला संकाय की सामान्य व आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर का t अनुपात 0.82 प्राप्त हुआ जो 58df पर 0.05 सार्थकता स्तर पर तालिकामान 2.00 से बहुत कम है। इस कारण दोनों के मध्यमानों के मध्य अन्तर सार्थक नहीं है। निष्कर्ष रूप में कहा जाता है कि कला संकाय के सामान्य तथा आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर के मध्यमानों में अन्तर दिखायी दे रहा है। यह संयोगवश दिखायी दे रहा है। अत: सामान्य वर्ग की छात्र-छात्राओं का आकांक्षा स्तर आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं की तुलना में सार्थक रूप से उच्च नहीं है।

शोध कार्य के निष्कर्ष

1. सामान्य वर्ग की छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति, आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं की शैक्षिक निष्पत्ति से थोड़ी उच्च पायी गयी किन्तु यह अन्तर सार्थक नहीं था। इसी प्रकार आकांक्षा स्तर में तुलनात्मक रूप से आरक्षित वर्ग की छात्राएँ आगे थी परन्तु यह अन्तर भी सार्थक नहीं था।
2. सामान्य वर्ग की छात्र-छात्राओं का आकांक्षा स्तर आरक्षित वर्ग की तुलना में कम होते हुए भी उनकी शैक्षिक निष्पत्ति आरक्षित वर्ग की तुलना में कम पायी गयी जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सामान्य वर्ग की छात्र-छात्राएं कहती कम हैं और करती ज्यादा हैं। अर्थात इनमें कार्य करने की क्षमता ज्यादा है। अत: यह तुलनात्मक रूप में कम आकांक्षा स्तर की हैं, किन्तु यह अन्तर कम होने के कारण सार्थक नहीं है।

3. आकांक्षा स्तर के सन्दर्भ में आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं उच्च आकांक्षा स्तर वाली तथा भविष्य में सफलता प्राप्त करने के लिए दृढ़ विश्वासी भी होती हैं जैसाकि विज्ञान वर्ग की छात्र-छात्राओं के सन्दर्भ में परिलक्षित होता है जिसमें आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राएं उच्च आकांक्षा स्तर को प्राप्त करने में सफल रही हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि आरक्षित वर्ग तथा सामान्य वर्ग की छात्र-छात्राओं के शैक्षिक निष्पत्ति तथा आकांक्षा स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। अर्थात आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं की उन्नति आकांक्षा स्तर तथा शैक्षिक निष्पत्ति, दोनों क्षेत्रों में हुई है जिसके कई कारण हो सकते हैं। यथा - आरक्षण व्यवस्था, स्कॉलरशीप, सामाजिक व कानूनी समानता, शिक्षा नीति में परिवर्तन, विद्यालयों की उपलब्धता, समुचित अवसरों की उपलब्धता, आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं द्वारा शिक्षा क्षेत्र में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करना आदि। अध्ययन में यदि विज्ञान वर्ग की छात्र-छात्राओं को देखा जाय तो आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं का आकांक्षा स्तर तथा शैक्षिक निष्पत्ति, दोनों सामान्य वर्ग की छात्र-छात्राओं की तुलना में उच्च पाया गया। परन्तु यह अन्तर सार्थक नहीं पाया गया।

प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर शोधार्थी की अपनी निजी राय यह है कि आरक्षण व्यवस्था को समाप्त कर दिया जाये और यदि आरक्षण की व्यवस्था की जाये तो उसका आधार आर्थिक होना चाहिए न कि जातिगत।

शैक्षिक निहितार्थ

प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर सामान्य व आरक्षित वर्ग की छात्र-छात्राओं के आकांक्षा स्तर व शैक्षिक निष्पत्ति में सह संबंधों का अध्ययन किया जा सकता है तथा उन्हें आकांक्षा स्तर व शैक्षिक निष्पत्ति को उच्च बनाये रखने में मदद की जा सकती है।

1. उच्च शैक्षिक निष्पत्ति प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है।
2. प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर सामान्य व आरक्षित छात्र-छात्राओं की समान शैक्षिक निष्पत्ति के कार्य कारणों के सिद्धान्त का अध्ययन कर उनके कारणों पर प्रकाश डाला जा सकता है।
3. छात्रों की रुचियों, आवश्यकताओं, आकांक्षा स्तर तथा योग्यताओं को ध्यान में रखते हुए उन्हें प्रोत्साहित किया जा सकता है।

4. विद्यालय में स्वस्थ वातावरण उपलब्ध कराया जा सकता है जिससे छात्र अपने आकांक्षा स्तर के अनुसार शैक्षिक निष्पत्ति प्राप्त करने में सक्षम हो सकें।
5. सामान्य व आरक्षित वर्ग में आकांक्षा स्तर तथा शैक्षिक निष्पत्ति में अन्तर नहीं है तथ्य को समझा जा सकता है।
6. विद्यालय में छात्र–छात्राओं के आकांक्षा स्तर को बढ़ाने के लिए नवीनतम ज्ञान प्रदान करने की व्यवस्था की जा सकती है।
7. विभिन्न प्रकार की पाठ्य सहगामी क्रियाओं को महत्व दिया जा सकता है जिसमें भाग लेकर छात्राएँ सफलता और असफलता के आधार पर अपनी क्षमताओं तथा आकांक्षा स्तर का मूल्यांकन कर सकें।
8. निम्न शैक्षिक निष्पत्ति वाली छात्राओं को ज्ञान प्रदान करके उनकी मदद की जा सकती है।

संदर्भ

वेस्ट, जॉन डब्ल्यू. (1963). *रिसर्च इन एजुकेशन.* प्रेक्टिस हॉल ऑफ इण्डिया प्राइवेट लि., नई दिल्ली,

भार्गव, महेश. (1963). *आधुनिक मनोविज्ञान परीक्षण एवं मापन.* हरप्रसाद भार्गव शैक्षिक प्रकाशन, आगरा.

भटनागर, आशा. (1983). *फिजिक्स ऑफ स्टूडेन्ट्स इन्वोल्वमेण्ट इन स्टडीज.* साइकोलॉजीकल कार्पोरेशन, आगरा.

चौहान, एस.एस. (1978). *एडवान्सड एजुकेशनल साइकोलॉजी.* विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., नई दिल्ली.

ड्रेवर, जेम्स. (1956). *ए डिक्शनरी ऑफ साइकोलॉजी.* पेन्जन बुक्स लि., मिडिल सेक्स, न्यूयार्क.

गुप्ता, एस.पी.. (1977). *सांख्यिकीय विधियाँ.* शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद.

गिलफोर्ड, जे.पी.. (1956). *फण्डामेण्टल स्टेटिस्टिक्स इन साइकोलॉजी एण्ड एजुकेशन.* मैकेग्रोहिल बुक कम्पनी, न्यूयार्क.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 23, अंक 1, अप्रैल 2016

चिंतक/चिंतन

कृष्णमूर्ति और टैगोर का मौलिक चिंतन और शिक्षा की वैकल्पिक व्यवस्था

प्रभात कुमार* एवं **आशीष श्रीवास्तव****

सारांश

मौलिक चिंतन के फलस्वरूप उदित विचारों की स्वीकार्यता कितनी होगी और फिर उन विचारों की प्रायोगिक तौर पर सफलता कितनी होगी तथा आम जन का मानस उन विचारों से कितना जुड़ सकेगा-यह अनुमान लगाना कठिन है परन्तु समय के पन्नों पर वे विचार अपनी सशक्त उपस्थिति जरूर दर्ज करा जाते हैं। अपने विचारों के साथ चलते हुए सत्य की खोज का साहस, आम सोच से हट कर कुछ खास करने का साहस और औसत के बीच सुंदर को बचाये रखने का साहस तो सिर्फ समय की रेत पर हस्ताक्षर करने वालों में ही होता है। जिद्दु कृष्णमूर्ति भी एक ऐसे ही अन्वेषक थे जिन्होंने सिर्फ सत्य को ही जिया, सत्य को ही कहा। हेनरी मिलर ने एक बार कहा था– ...हमारे समय का एक ऐसा महामानव जिसे संभवत: सम्पूर्ण रूप से आत्मसाक्षात्कार को उपलब्ध कहा जा सकता है। शिक्षक होते हुए भी कृष्णमूर्ति को जो चीज अद्वितीय बनाती है वह है सत्य को अपने पूरे स्वरुप में स्वीकार करना न कि आधे-अधूरे रूप में... सत्य को कहने की हिम्मत और उसके परिणामस्वरूप घटे घटना-क्रम को दुनिया ईसामसीह, सुकरात, गैलीलियो आदि के संदर्भ में देख चुकी है। कृष्णमूर्ति ने 1929 में ही कहा कि किसी भी प्रकार का संगठन मनुष्य को हजारों सालों से चली आ रही मान्यताओं, रुढ़ियों की जकड़बंदी से मुक्ति दिलवाने में अक्षम है

*शोध छात्र, शिक्षा विभाग, विश्व भारती, शान्ति निकेतन, ई-मेल: prabhat1381@gmail.com
**उप-प्राचार्य, शिक्षा विभाग, विश्व भारती, शान्ति निकेतन, ई-मेल: mahatiasheesh@gmail.com

परन्तु विद्यालय अपने सांगठनिक रूप में होते हुए भी कृष्णमूर्ति के चिंतन में सकारात्मक रूप से उपस्थित था। शिक्षा का जो उद्देश्य होना चाहिए उनकी प्राप्ति में अपने समय के अक्षम विद्यालयों ने ही कृष्णमूर्ति और टैगोर दोनों को अलग तरह के विद्यालयों की स्थापना के लिए प्रेरित किया। मेरा यह आलेख उन कारणों की पड़ताल करता है जिसने नई शिक्षा–व्यवस्था को बनाने के लिए उद्दीपक का काम किया। वतर्मान समय में कृष्णमूर्ति तथा टैगोर के विद्यालयों की प्रासंगिकता तथा सरकार की वतर्मान नीतियों के अध्ययन के फलस्वरूप उपजी निराशा के संदर्भ में नये विकल्प की तलाश भी यह आलेख करता है। सही नीतिगत शैक्षिक दृष्टिकोण के अभाव में आने वाले भविष्य की रूप–रेखा को भी यह आलेख प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।

परिचय

विद्यालय वह पावन स्थान है जहाँ सभी मिलकर जीवन की जटिलता और उसकी सरलता के बारे में सीखते हैं। विद्यालय सीखने का स्थान है इसिलए यह पवित्र है।

– जिद्दु कृष्णमूर्ति

अपनी अनुभूति और अनुभव के आधार पर उपजे ख्यालों को एक ओर जहाँ वास्तविकता का रूप देना आसान होता है वहीं दूसरे तक उन अनुभूति–जन्य अनुभवों को संप्रेषित करना मुमिकन हो पाता है। और जब यह अनुभूति और अनुभव कुछ ऐसे शिक्षाविदों के जीवन दर्शन से जुड़ा हो जिन्होंने न केवल सदियों से चली आ रही मान्यताओं एवं विश्वासों और संस्थागत ढांचों के कार्यकलापों पर सवाल खड़े किये बल्कि ऐसी संस्थाओं के निमार्ण के साक्षी भी बने जिनकी विरासत पर आज भी अनगिनत पीढ़ियों को गर्व है– तो फिर उन्हें याद करना लाजमी हो जाता है। वे संस्थाएं आज भी अपनी प्रासंगिकता साबित कर रहीं हैं जिनके विचारों की अनदेखी आज भी असंभव है। जिनकी संस्थायें आज भी बढ़ते अंधकारों के बीच ध्रुवतारा की तरह सरकारी तथा अन्य सभी संस्थाओं के लिए मार्गदर्शक का काम कर रहीं हैं। आज भी कोई शिक्षा नीति उन महान शिक्षा दार्शनिकों के विचारों को शामिल किये बिना पूरी नहीं होती। सत्य की खोज करने वाले उन बौद्धिकों द्वारा निर्मित संस्थायें आज भी दूसरी संस्थाओं के लिए आदर्श बनी हुई हैं। महान चिंतकों के विचारों और कार्यों का अध्ययन समकालीन शिक्षा व्यवस्था के प्रति उनके गहरे क्षोभ को दशार्ता है। रूसो, निकोलाज फ.एस. ग्रूंविग पाओलो फ्रेरे, जॉन हॉल्ट,

ईवान इलिच, जॉन डिवी, मारिया मोंटेसरी, पॉल गेहीब, अल्डुअस और डोरा हक्सले, रवीन्द्र नाथ टैगोर, श्री अरिवंद, गिजूभाई, जिद्दु कृष्णमूर्ति इन तमाम शिक्षा-चिंतकों ने अपने समय की शिक्षा नीतियों के खोखलेपन, शिक्षण के तरीकों तथा विद्यालयी कार्य-पद्धतियों और उनके उद्देश्यों पर न केवल असहमति जताई अपितु अपनी सोच को शिक्षण-संस्था की स्थापना द्वारा यथार्थ रूप दिया। निकोलाज फ.एस.ग्रूंविग ने फोकस्कूल्स (1856, डेनमार्क), पॉल गेहीब ने ओल्डेनवाल्डस्यूल (oldenwaldeschule, Germany), अल्डुअस और डोरा हक्सले ने बेकन हिल स्कूल, मारिया मोंटेसरी ने चिल्ड्रेन्स हाउस', जॉन डिवी ने 'लेवोरेटरी स्कूल' गिजू भाई बधेका ने 'बाल मंदिर', श्री अरविन्द ने 'आश्रम स्कूल' की स्थापना की। इसी कड़ी में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध और अंत में रवीनद्रनाथ टैगोर तथा जिद्दु कृष्णमूर्ति के रूप में दो ऐसे नवसृष्ट मानवों का उदय हुआ जिन्होंने पूर्वी तथा पश्चिमी गोलार्ध को जोड़ते हुए शिक्षा और उससे जुड़े तमाम आयामों को पुनर्परिभाषित करने में अपना अमूल्य योग्दान दिया। सभी तरह की रुढ़िगत मान्यताओं को दरिकनार कर आनंद की पाठशाला का निमार्ण किया। टैगोर के उत्कृष्ट योग्दान पर कृष्ण कुमार कहते हैं– ***ठाकुर ने जहाँ एक ओर ज्ञान की औपनिवेशिक अवधारणाओं को मिटाने की कोशिश की वहीं शिक्षा से उत्पीड़ित बच्चे की मुक्ति के लिए ब्रह्मचर्याश्रम की आधारशिला रखी।*** कृष्णमूर्ति का प्रादुर्भाव एक ऐसे मुक्त मन वाले मानव का आगाज था जिसने सत्य की खोज स्वंय की, जिसने शिक्षण को महानतम पेशा बताया और जिन्होंने स्कूल को विद्यार्थी के भीतर उसकी प्रज्ञा जगाने वाले स्थल के रूप में देखा। सम्पूर्ण विश्व में आठ से अधिक स्कूलों की स्थापना से जुड़े कृष्णमूर्ति ने विद्यालय के रूप में बच्चों को एक ऐसी जगह उपलब्ध करवाने की वकालत की जो अवकाश का स्थल हो जहां शिक्षक तथा जिसे शिक्षित होना है, दोनों सीख रहे हों। अवकाश का अर्थ है एक ऐसा मन जो निरंतर किसी चीज के साथ, किसी समस्या के साथ या फिर किसी सुखोपभोग के साथ व्यस्त न हो। अवकाश का अर्थ है ऐसा शांत मन जिसके पास अवलोकन करने के लिए अपिरिमत समय है, जहाँ कोई प्रयोजन नहीं है इसिलए कोई दिशा नहीं है। यही अवकाश है और यही वह अवस्था है जिसमें मन सीख सकता है।

प्रासंगिकता

कृष्णमूर्ति तथा टैगोर जैसे विराट व्यक्तित्व के कृतित्व की प्रासंगिकता समय सापेक्ष न

होकर समय निरपेक्ष होती है। अगर टैगोर प्रासंगिक नहीं होते तो फिर राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूप-रेखा 2005 की शुरुआत टैगोर के निबंध 'सभ्यता और प्रगति' से उधृत एक वाक्यांश से न की गई होती। स्वतंत्र भारत के सत्तर सालों का शैक्षिक इतिहास बताता है कि जहाँ एक ओर हम शिक्षा के मूल उद्देश्यों को पाने में पूरी तरह विफल रहे हैं वहीं बाजार के बढ़ते प्रभाव में आकर हमारी शैक्षणिक नीतियों ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में आज शिक्षा के उद्देश्यों में भी परिवर्तन प्रारंभ कर दिया है। यशपाल कमेटी रिपोर्ट राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूप-रेखा 2005 और एन.सी.एफ.टी.ई. 2009 ये तीनों रिपोर्टों के अंदर वर्णित तथ्यों के आधार पर हम अपनी शिक्षा-व्यवस्था की दयनीय स्थिति का सहज ही अनुमान लग सकते हैं। इन सत्तर सालों के दौरान किये गए बेहतरी के उपायों के नतीजे अब सामने आने लगे हैं। देश के तमाम सरकारी संस्थाएं अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहीं हैं। 'गुणवत्ता' शब्द मानो शैक्षणिक परिदृश्य से कब का गायब हो चुका है। शायद तभी भारतीय शैक्षिक संस्था एवं वैश्विक परिदृश्य से गायब हैं। पिछले दिनों हैदराबाद विश्वविद्यालय, जवाहर लाल नेहरु विश्वविद्यालय, कोलकाता विश्वविद्यालय, जादवपुर विश्वविद्यालय जैसे देश के शीर्ष संस्थानों में जो कुछ हुआ वह सिर्फ पठन-पाठन से जुड़े सभी लोगों के दिशाहीन हो जाने की कहानी है। कोलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति से धक्का-मुक्की की जाती है, हैदराबाद के उपकुलपति को छुट्टी पर जाने को मजबूर किया जाता है, विश्वविद्यालय परिसर में न्यायालय और पुलिस हस्तक्षेप कर रही है। आखिर ये क्या हो रहा है। विश्वस्तरीय शिक्षा देने वाला फिनलैंड अपने बच्चों को राजनीतिज्ञों तथा व्यवसायिओं से दूर रखने की नीति पर अमल करता है। क्या हमें भी राधाकृष्णन और टैगोर के शैक्षणिक परिसर से राजनीतिज्ञों को दूर रखने की बातों पर अमल नहीं करना चाहिए? बड़ा स्पष्ट है कि हम नीचे जा रहे हैं और अभी तो शुरुआत है। वैसे यह जो गिरावट हम देख रहे हैं वो कोई अनहोनी घटना नहीं है। जिस देश ने अपनी वैचारकी में शिक्षा के स्वरुप को लेकर बनने वाली नीतियों को सबसे निचले पायदान पर रखा हो, अब तक की तमाम आयोगों तथा समीतियों द्वारा सौपीं गयी रिपोर्ट सिर्फ विद्यार्थियों को दिए प्रश्न-पत्रों के उत्तर देने के काम आ रहा हो और नीति निर्धारकों की दृष्टि में शिक्षा का केवल आर्थिक पक्ष रह गया हो- उस देश के शैक्षणिक माहौल का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। वर्तमान की दयनीय स्थिति में हम कोई एक दिन में नहीं पहुंचे हैं। शिक्षा और स्वास्थ दो ऐसे क्षेत्र रहे जो सबसे अधिक महत्व के होते हुए भी उपेक्षित रहे। ***न्यायालयों में लंबित करोड़ों मुकदमे जहाँ हमारी मानिसक विपन्नता***

को दशार्ते हैं वहीं अस्पतालों में रोगियों की लम्बी कतारें हमारे शारीरिक रूप से रुग्ण हो जाने का द्योतक हैं। स्वाभाविक है कि शारीरिक और मानिसक रूप से कमजोर भारतीय मन अर्थ को ही प्रश्रय देगा और अर्थ के गणित में सटीक बैठने वाली शिक्षा को ही पाना पसंद करेगा। फिर... तत्कालीन परिस्थितियों के संदर्भ में जो बात सबसे अधिक विचलित करती है, अगर कृष्ण कुमार के शब्दों में कहें, ***वह है एक मात्र बाजार को धुरी मान लेना और सिर्फ बाजार के संदर्भ में किसी विचार या नीति का मूल्यांकन करना।*** नीति निधार्रकों पर वैसी शिक्षा को बढ़ावा देने का दबाव है जिसकी न केवल संबद्धता बाजार से हो बल्कि बाजार के योग्य भी हो अर्थात मुनाफे का सौदा हो। ***अब सवाल यह है की अर्थ के गणित में उलझी शैक्षणिक नीति क्या राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूप-रेखा 2005, यशपाल रिपोर्ट या फिर आने वाली राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2016 में उधृत बातों का अक्षरशः पालन करेगी या आंशिक? अनुभव तो बाजार के साथ ही खड़ा दीखता है। नीतियों को अमल में लाने वाली संस्थाएं बाजार को नाखुश नहीं देख सकतीं, यह सत्य भी है और अनुभव भी।***

बाजारवाद वह प्रक्रिया है जो लोंगों की अभिररुचियों को बदलता ही नहीं अपितु गढ़ता भी है। एक समय था जब हमारी अभिरुचियाँ हमारे देशज ज्ञान तथा परंपरा से निकल कर आती थीं और अभिरुचिओं को गढ़ना या बदलना हमारे विवेक द्वारा तय होता था। फिर धीरे-धीरे बाजार ने अपना पैर फैलाना प्रारंभ किया। बाजार ने मानव मन की कमजोरियों को जाना फिर परखा और फिर क्रमशः आगे बढते हुए हमारी रुचियों पर अपनी रुचियों द्वारा कब्जा कर लिया। अब बाजार यह तय करता है की हमें क्या पढना चाहिए, क्या पहनना चाहिए, किस तरह सोचना चाहिए या फिर क्या खाना चाहिए। ***बाजार ने हमारी मानिसकता को इस कदर आक्रांत कर रखा है कि हमारे लिए सामाजिक प्रतिष्ठा का आधार आचार, विचार, व्यवहार न होकर साधन संपन्नता हो गया है। हमने अपनी प्रगति, उन्नति और लक्ष्य के लिए शिक्षा, संस्कृति, स्वास्थ्य सभी कुछ को बाजार के बीच ला पटका और पंसारी की दुकान का सामान बना दिया।*** अगर इसी तरह बाजार का प्रभुत्व बढ़ता रहा तो एकदिन हमारे समाज की चेतना वही हो जाएगी जो बाजार चाहता है। हम मूल्य रहित जीवन शैली को गलत मानने से इंकार कर देंगे। शिक्षा को नफा-नुकसान की तराजू पर तौला जाने लगेगा। इस प्रकार बाजार द्वारा निर्धारित शिक्षा हमारी सोच को एकदिन इतना दूषित कर देगी कि हम आसानी से अपनी परम्पराओं से उपजे देसज मूल्यों की जगह बाजार द्वारा

स्थापित मूल्यों को जगह देने लगेंगे। इस तरह एकदिन हम अपने मूल से अलग हो जायेंगे और यही बाजार का अंतिम लक्ष्य होता है। अत: समय रहते हमें उन चीजों की पहचान करनी होगी जिन्हें बाजारवाद अब तक छू नहीं पाया है। कृष्णमूर्ति तथा टैगोर के विचार तथा स्कूल आज भी अपनी गुणवत्ता की अक्षुण्णता को बनाये रखते हुए तमाम अंधकारों तथा फैलती विद्रूपताओं के मध्य एक सशक्त आशा-किरण की तरह उपस्थित हैं। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् भी कृष्णमूर्ति के एक स्कूल 'ऋषि वैली' की कार्यशैली के अध्ययन को प्रोत्साहित करती है। अत: इनके विचारों तथा संस्थायी गतिविधिओं का अध्ययन न केवल प्रासंगिक है अपितु अनिवार्य भी। शायद तभी हम सभी अपने अस्तित्व को थोड़ा बहुत बचा पायें, अपनी विवेक शक्ति द्वारा अच्छे-बूरे का अंतर समझ पायें।

उद्देश्य

1. उन मूल कारणों की पड़ताल करना जिसने कृष्णमूर्ति तथा टैगोर जैसे चिंतकों को शिक्षा की वैकल्पिक व्यवस्था करने को उद्वेलित किया।
2. वतर्मान संदर्भ में वैकल्पिक शिक्षण संस्थानों की जरूरत का अध्ययन करना।
3. कृष्णमूर्ति और टैगोर के मौलिक चिंतन के फलस्वरूप उपजे विचारों की वतर्मान परिस्थितयों में उपयोगिता का अध्ययन करना।

विश्लेषण

किसी भी चिन्तक के चिंतन में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उसका बचपन जरूर शामिल होता है। बचपन से जुड़ी यादों में खुशी या दु:ख के पल हो सकते हैं परन्तु बचपन का साथ अंत तक बना रहता है। चौदहवीं संतान होने के कारण अपनी माँ से मिलने वाले स्नेह की अनुपलब्धता और नौकरों के तानाशाही संरक्षण में घर के छोटे दायरे में विस्तार पाता जीवन-टैगोर को कल्पना के उड़ानों के लिए मिलने वाले उत्प्रेरक तत्वों की आपूर्ति में कहां सक्षम था। वंदिशों में बीते बचपन की परिणति ही शांतिनिकेतन थी। आज भी वहां की आवो-हवा में उन्मुक्तता और मुक्ति का अहसास हम कर सकते हैं। उम्र बढ़ी तो बंदिशें भी कम हुई; हिमालय की यात्रा ने सत्य से साक्षात्कार करवाया और इंग्लैंड की यात्रा ने बचपन से दूरागत के प्रति छिपी उत्कंठा की संतुष्टि के लिए शुरुआती पहल कर दी। माता-पिता से मिली उपेक्षा, समय से पहले स्कूली

शिक्षा की शुरुआत, अपने भाईयों को घोड़ा-गाड़ी में बैठकर स्कूल जाते देख स्कूल के प्रति जगी उत्कंठा का घर में आने वाले मास्टरजी द्वारा गाल पर रसीद तमाचे के कारण अंत हो जाना, ओरिएण्टल सेमिनरी के रूप में प्रथम विद्यालयी अनुभव में ही शारीरिक दंड विधान की जानकारी का हो जाना, नार्मल विद्यालय के रूप में अपने दूसरे स्कूली अनुभव के दौरान स्थानीय भाषा की जगह अंग्रेजी भाषा के प्रचलन के उपरांत उपजी नीरसता–ये सब तबुला रसा (TABULA RASA) स्वरुप अवचेतन मन में अंकित ऐसे बातें थीं जिसने 'पाठ भवन' की बुनियाद रखने के लिए आधार तैयार किया। बचपन में टैगोर के बाल-मन को जिन-जिन चीजों ने आहत किया, उन सारे पहलुओं का अपने समय के समकालीन शिक्षण संस्थाओं द्वारा किसी भी प्रकार समाधान पाता न देखकर ही गुरुदेव ने शान्ति निकेतन के रूप में एक सुन्दर विकल्प इस संसार को दिया जिसके अनुपम स्वरूप से दुनिया भली-भांति परिचत है।

यद्यपि जिद्दु कृष्णमूर्ति जिस पृष्ठभूमि से आते हैं वह टैगोर से बहुत अलहदा किस्म का है परन्तु दोनों के बहुत सारे विचारों और कार्यों में तथा उनके उद्देश्यों में समानता दिखती है। इन दोनों चिंतकों की पढ़ाई लगभग अनौपचारिक रूप से ही हुई; दोनों ही किसी भी डिग्री या डिप्लोमा को पाने में असमर्थ रहे। दोनों ने ही युवा अवस्था के बीसवें बसंत के पहले ही औपचारिक शिक्षा को अलिवदा कह दिया; दोनों ने ही प्रेम को सभी समस्याओं के निराकरण में आवश्यक तत्व माना और दोनों ने ही वैकल्पिक शिक्षण संस्था के रूप में समाज को अनुपम भेंट दिये। कृष्णमूर्ति के विचारों की संबद्धत्ता खुद के अनुभव से कम तथा प्रेक्षण से ज्यादा थी। कृष्णमूर्ति से जुड़े लोगों का एक ऐसा समूह रहा है जिसने कृष्णमूर्ति को एक घटना माना और कृष्णमूर्ति के द्वारा व्यक्त विचारों तथा कार्यों की पृष्ठभूमि में किसी भी तरह की अनुभवजन्य संलग्नता से इंकार किया। जो भी विचार कृष्णमूर्ति द्वारा व्यक्त हुए वे सभी स्वत: स्फूर्त थे। वे अनुभव को प्रेक्षण में अवरोध की तरह देखते थे। इन सब बातों के बीच अगर हम उनके बचपन से जुड़ी बातों पर विचार करें तो पाते हैं की कृष्णमूर्ति ने भी टैगोर की तरह ही पेनाथुर सुब्रमण्यन हाई स्कूल में शारीरिक दंड विधान को महसूस किया था। प्रत्येक दिन मिलने वाले दंड तथा शिक्षक में प्रेक्षण शक्ति के अभाव में उनकी नैसर्गिक प्रतिभा की उपेक्षा ने कृष्णमूर्ति के अन्दर औपचारिक शिक्षा के प्रति ऐसी अरुचि पैदा कर दी कि वे आजीवन औपचारिक शिक्षा की प्रासंगिकता पर सवाल खड़े करते रहे। 1922 में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय,

बर्कले की यात्रा ने कृष्णमूर्ति को बहुत प्रभावित किया था। 1868 में स्थापित इस विश्वविद्यालय ने 1964 तक सत्तर से अधिक नोबेल विजेता इस दुनिया को दिए। बोलने की स्वतंत्रता का हिमायती यह विश्वविद्यालय कृष्णमूर्ति को अपने वातावरण में रचे-बसे उन्मुक्तता, स्वतंत्रता तथा समानता को प्रश्रय देने वाले भाव के कारण आकर्षित करने में सफल रहा था। अपने समय की समकालीन औपचारिक शिक्षा व्यवस्था को असंगत तथा शिक्षा के उद्देश्यों को पाने में असफल बताने वाले कृष्णमूर्ति की कैलिफोर्निया यात्रा ने एक ऐसे शिक्षण संस्थान की नींव रखने संबंधित बीज-विचार को रोपित किया जो सरकारी संस्थानों की असफलता के एवज में एक बेहतरीन विकल्प के रूप में 1931 में ऋषि वैली के रूप में दिखा। लगभग नौ दशकों के लम्बे समयावधि में इस विद्यालय ने अपनी अद्वितीय छवि को बनाये रखा है।

टैगोर ने जिस वैकल्पिक शिक्षा व्यवस्था की शुरुआत की उसके पीछे सिर्फ बचपन के अनुभव का ही योग्दान नहीं था। उस समय की सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों ने भी कुछ अलग से करने को प्रेरित किया। इतना ही नहीं धार्मिर्क पुस्तकों, खासकर उपनिषद का भी अलग विकल्प की तलाश में योग्दान था। ऐसा प्रतीत होता है कि विभिन्न देश-काल में किये गए शिक्षा से संबंधित प्रयोगों और प्रयासों से टैगोर पूरी तरह वाकिफ थे। समग्रता के द्योतक टैगोर के प्रतिमान पारंपरिक और आधुनिक दोनों स्रोतों के समिश्रण से निकले प्रतीत होते हैं। तपोवन ने जहाँ शांतिनिकेतन के लिए एक आधार का काम किया वहीं नालंदा, तक्षशिला और विक्रमशिला के प्राचीन बौद्ध मठों ने विश्व भारती को स्वरुप प्रदान करने में आधार भूमि का काम किया। ...विश्व-भारती की स्थापना के मूल में उपनिषद में उद्धृत वसुधैव-कुटुम्बकम का भाव निहित है... मैकाले की नीतियों को कार्यान्वित करने के बाद देशज शिक्षा की दयनीय स्थिति तथा स्थानीय भाषा में उपलब्ध ज्ञान को निम्न स्तर का बताते हुए खत्म करने की साजिश–ये दो ऐसे मूल कारण थे जिसने टैगोर का ध्यान 'मूल' की महत्ता की ओर आकृष्ट किया तथा उसे संरक्षित करने संबंधित विचारों का बीजारोपण किया। सामाजिक कुरीतियों तथा स्त्री शिक्षा से जुड़ी हुई कई समस्याओं के निवारण में उन्नीसवीं सदी के अंत तक आते-आते उपलब्ध संस्थाओं की असमर्थता से टैगोर परिचित हो चुके थे। जो भी संस्थायें शिक्षण कार्य से सम्बद्ध थीं वे सभी ब्रिटिश हुकूमत को लाभ पहुँचाने वाली नीतिओं के अनुकरण में व्यस्त थीं। स्वाभाविक था कि उस समकालीन शिक्षा व्यवस्था से भारत वर्ष का भला नहीं होने वाला था। टैगोर के विद्यालय संबंधित विचार औपनिवेशिक शासन के

वरक्स उपजे असंतोष का ही नतीजा था... पश्चिम में भी ठीक से बच्चों को शिक्षित करने के लिए प्रबंधन नहीं है। जीवन का सामना करने के लिए आवश्यक नैतिक, नागरिक, धार्मिक मूल्यों का समावेशीकरण पश्चिम के विद्यालयों में भी नहीं किया गया है। भाषा से संबंधित विवाद तो आज तक चला आ रहा है। 1892 में अपने एक लेख 'शिक्षार हेरफेर' में उन्होंने शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा को अपनाने की वकालत की। बाद में आगे चलकर पाठ भवन में बंगला भाषा ही शिक्षा का माध्यम बनी और आज तक बनी हुई है। आजादी के सत्तर सालों के बाद भी हम भाषा के स्वरुप को लेकर स्पष्ट नीति नहीं बना पाए हैं। सरकारी उदासीनता, हिंदी भाषा को दिखावे के तौर पर संरक्षण देने की बात तथा बाजार का अंग्रेजी के साथ खड़ा होना–इन तीनों ही बातों के कारण नीति निधार्रक कभी भी स्पष्ट नीति नहीं बना पाएंगे। अत: वतर्मान समय में भी वैकल्पिक शिक्षा–संस्थाओं की प्रासंगिकता बनी हुई है। शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रगाढ़ शिक्षक–छात्र संबंध की जरूरत से गुरुदेव वाकिफ थे और उन्हें यह पता था की सरकारी स्कूलों या निजी स्कूलों में इस तरह के संबंधों की कल्पना तक नहीं की जा सकती। आज जब शिक्षा का पूरी तरह व्यवसायीकरण हो चुका है और शिक्षक के लिए प्रत्येक क्षण मुनाफे का सौदा साबित हो रहा है तो इस स्थिति में एक अध्यापक के पास अपने छात्र से मन के स्तर पर जुड़ने का वक्त कहाँ है। यह तो पाठ भवन या ऋषि वैली में ही संभव था या अब भी है। शेष तो सरकार की नीतियों के अंतर्गत कक्षाओं में रोबोर्ट को तैयार करने की मुहीम पहले की तरह अब भी जारी है और आगे भी जारी रहनी है। अत: आज भी वैकल्पिक शिक्षा व्यवस्था के द्वारा ही अध्यापक–छात्र संबंध को बाजार के ओक्टोपसी पंजे से बचाया जा सकता है।

टैगोर द्वारा की गई 34 देशों की यात्रा और कृष्णमूर्ति द्वारा की गयी 22 देशों की यात्रा ने भी दोनों शिक्षकों को उस आनंद की पाठशाला को निर्मित करने की सोच दी जहां शिक्षा अपने मूल प्रकृति के साथ संचरित हो रही हो। ...अंतरराष्ट्रीय संबंधों और अन्य वैश्विक शिक्षकों के साथ बढ़ते अपनेपन तथा परिचय ने टैगोर की धारणा को प्रभावित किया और जिसकी झलक हम विश्व भारती के शैक्षिक स्वरुप में पाते हैं।

पॉल गेहीब के ओल्डेनवाल्डस्यूल स्कूल की यात्रा, 1921 में जिनेवा स्थित जे.जे.रूसो इंस्टिट्यूट की यात्रा तथा इटली के विभिन्न स्कूलों की यात्रा ने भी टैगोर को अपनी संस्था को सही स्वरुप देने में मदद की थी। सिस्टर निवेदिता से बने संपर्क ने टैगोर को

पेस्टेलॉजी (Johan Pestalozzi) तथा फ्रेडरिक फ्रोबेल (Friedrich Froebel) दोनों के बारे में जानने का मौका दिया। नरेश चन्द्र सेन गुप्ता टैगोर के ब्रह्मचर्य आश्रम (पाठ भवन) को प्राचीन भारतीय शैक्षिक आदर्शों तथा पेस्टेलॉजी के विचारों पर आधारित बताते हैं। मारिया मोंटेसरी और जॉन डिवी दो ऐसे शिक्षाविद् रहे हैं जिनके कार्यों का टैगोर के वैश्विक व्यक्तित्व के साथ गहरा संबंध रहा है। श्रीनिकेतन में टैगोर के द्वारा किये गए नवीन प्रयोगों पर डिवी के प्रभाव को हम आसानी से देख सकते हैं। शिक्षा-सत्र के शैक्षिक-प्रारूप पर तो डीवी के विचारों की छाप साफ तौर पर जाहिर होती है। कृष्णमूर्ति सत्तर सालों से भी अधिक समय तक पश्चिमी दुनिया के संपर्क में रहे और पूरी दुनिया के विभिन्न समुदायों से जुड़े लोंगों, सरकारों, विश्वविद्यालयों, शिक्षकों तथा विद्यार्थियों की गतिविधियों का प्रेक्षण करते रहे। कृष्णमूर्ति ने पाया कि सरकारी या गैर सरकारी तंत्र के अंतर्गत चल रहे स्कूल किसी भी प्रकार से बच्चों को जीवन के मौलिक प्रश्नों के उत्तर खोजने में सहायक नहीं हैं। ये स्कूल बच्चों को उनके यांत्रिक औसत दर्जे की गैररचनात्मक जिन्दगी से बाहर निकालने में असमर्थ हैं। सच्चाई तो यह है कि सरकारी या गैरसरकारी तंत्र के अंतर्गत चल रहे स्कूल अधिकारिक नीतिओं के पालन द्वारा सिर्फ एक औसत दर्जे के मनुष्य का ही निमार्ण करना चाहते हैं, एक ऐसा मनुष्य जो अलगव में, प्रतिद्वंदिता में तथा प्रतिस्पर्धा में विश्वास करे और सरकारों तथा अधिकारिक मालिकों के विरुद्ध न जाये। कृष्णमूर्ति ने जिन संस्थानों को विकल्प के रूप में स्थापित किया उन संस्थानों में अधिकारिक तत्वों की अनुपस्थिति को आसानी से महसूस किया जा सकता है। शिक्षक-छात्र संवाद स्कूल की केंद्रीय प्रक्रिया का मुख्य हिस्सा है। यह सुझाव दिया गया था कि ऋषि वैली स्कूल में शिक्षक-छात्र संवाद के अनौपचारिक स्वरुप को अपनाना चाहिए... शिक्षक-शिष्य के संबंधों में सत्तावादी तत्व की व्याप्ति में कमी को प्रश्रय देना... कृष्णमूर्ति ने विद्यालय को एक ऐसी जगह के रूप में देखा जहां शिक्षक एक ऐसे मानव के आविर्भाव में संलग्न हो जो वैश्विक संबंध का भाव रखता हो, जिसमें राष्ट्रीय-क्षेत्रीय अलगव की भावना न हो, और जो वास्तव में मूल्यहीन, पुरानी, मृत परम्पराओं से मजहबी तौर पर चिपका न हो।

कृष्णमूर्ति अपने समय के समाज, सरकार और उसकी सोच से पूणर्तया भिज्ञ थे। प्रत्येक सरकार की अपनी कार्य सूची होती है और उस सूची में शामिल लक्ष्य बाजार के लक्ष्य होते हैं न की शिक्षा के। कृष्णमूर्ति जैसे द्रष्टा की दृष्टि इस बात को बहुत पहले जान गई थी कि बाजार को समर्थित नीति का वचर्स्व क्रमशः बढ़ता ही

जायेगा और वही हो रहा है। अत: शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में वैकल्पिक व्यवस्था को कृष्णमूर्ति बेहतर समझते थे। आजादी के सत्तर सालों के बाद भी जब ***राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा 2005 यह कहती है कि स्कूल इस तरह की विचार पद्धति को प्रचारित करते हैं जो रचनात्मक चिंतन व अंतर्दृष्टि को हतोत्साहित करे, स्कूल व्यवस्था में एक विशेष तरह की कठोरता है जो बदलाव के मार्ग पर एक बाधा की तरह खड़ी हो जाती है, स्कूलों में सीखने-सिखाने के नाम पर जो दिया जाता है वह नयी जानकारी और ज्ञान रचने की मानवीय सामर्थ्य के महत्वपूर्ण आयाम को अनदेखा कर देता है–*** तो फिर इन कथनों के आधार पर हम दो तीन बातें साफ-साफ समझ सकते हैं: (1) आने वाले समय में सरकारी तथा गैर-सरकारी विद्यालय अपने मूल प्रकृति में कोई बदलाव नहीं लायेंगे (2) विद्यालय हतोत्साहित करने वाले वातावरण अर्थात भय के साम्राज्य को कायम रखेंगे अर्थात कृष्णमूर्ति के शब्दों में अच्छाई का प्रस्फुटन नहीं होने देंगे। (3) पाओलो फ्रेरे की 'शिक्षा की बैंकिंग अवधारणा' को पूर्णत: सफल बनाते हुए ज्ञान के सृजन की जगह सूचनाओं को जमा करने वाली संस्था के रूप में बने रहेंगे। इससे बड़ी बिडम्बना क्या होगी कि हमारे दस लाख विद्यालय में से अधिकांश रचनात्मक चिंतन को प्रोत्साहित करने की जगह उसे हतोत्साहित करने में लगे हैं। इन तथ्यों के आधार पर हम यह सहजता के साथ कह सकते हैं कि टैगोर तथा कृष्णमूर्ति के द्वारा की गयी वैकल्पिक व्यवस्था न केवल एक जरूरी कदम था अपितु एक ऐसी शुरुआत भी जो आज कुछ अधिक ही प्रासंगिक जान पड़ती है। यह जान कर आश्चर्य होता है कि शिक्षा ही सिर्फ एक ऐसा क्षेत्र है जिसके मद में पैसे की कमी का रोना अब तक की सभी सरकारें रोती आयीं हैं। साथ-ही-साथ यह जानकर दु:ख होता है कि विकिसत देश अपने कुल आमदनी का आधा हिस्सा तो सिर्फ रक्षा क्षेत्र की जरूरतों को पूरा करने तथा लिए गए कर्ज को चुकाने में ही कर देते हैं। ...अधिकांश विकासशील देशों में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति अच्छी नहीं है... निरा तथ्य यह है कि अधिकांश विकासशील देशों की सरकारें अपनी वार्षिक आय का लगभग आधा हिस्सा सैन्य साजो-सामान को खरीदने और उनके रख-रखाव पर खर्च कर रहीं है... पैसों की कमी का दुखड़ा रोने वाली राज्य सरकारें किस प्रकार गैर जरूरी मदों में अपने हित को साधने हेतु पैसों का दुरूपयोग करती हैं। उसकी एक छोटी बानगी देंखिये... शिक्षा, स्वास्थ्य और सुरक्षा जैसे अति-आवश्यक कामों पर खर्च के लिए पैसा नहीं है, पर लोंगों को आलसी

बनाने के तरह-तरह के तरीके ढूंढे जा रहे हैं। बहुत दूर जाने की जरूरत नहीं। आप तमिलनाडु के हाल ही में हुए चुनावों पर नजर डाल देखिये। 2006 से 2016 के बीच के दस सालों में लोक-लुभावन प्रस्तावों ने सरकारी खजाने के 15,000 करोड़ रुपयों पर डकैती डाल दी। किसी ने रंगीन टीवी बांटे, तो किसी ने चावल। मामला ध ोती-साड़ी तक सीमित नहीं रहा। सोने के मंगल-सूत्र वितिरत किये गए...।

निष्कर्ष

भय से मुक्ति, द्वंद से मुक्ति, अधिकारिक तत्व से मुक्ति, चली आ रही रूढियों से मुक्ति के लिए कृष्णमूर्ति और टैगोर द्वारा प्रस्तुत विकल्प न केवल अपनी सार्थकता को साबित कर चुका है बल्कि वर्तमान समय में, जबकि यह स्पष्ट हो चुका है कि सरकार का अच्छे विद्यालय के निर्माण में कोई दिलचस्पी नहीं है, कुछ अच्छे के बचे रहने की उम्मीद जगती है। पाठ भवन तथा ऋषि वैली जैसे विद्यालय टैगोर तथा कृष्णमूर्ति के मौलिक चिंतन से उपजे विचारों की प्रायोगिक सफलता के जीते-जागते उदाहरण हैं और उन गिने-चुने लोगों तथा संस्थाओं के लिए प्रेरणास्वरुप भी जो लीक से हटकर चलने का दुस्साहस रखते हैं। सभी आयोगों की रिपोर्ट के अध्ययन तथा सरकारों की नीतियों का विश्लेषण शिक्षा के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण की पुष्टि करता है। परन्तु ऐसा नहीं है कि अंधकारों और निराशाओं के बीच कुछ बचा नहीं है या कुछ बचाया नहीं जा सकता। वह सबसे अच्छा समय था, वह सबसे बुरा समय था, वह ज्ञान प्राप्ति का उम्र था, वह मूर्खताओं से भरा उम्र भी था, वह विश्वास का युग था, वह अविश्वास का युग था, वह प्रकाश का मौसम था, वह अंधेरे का मौसम था, वह आशा का वसंत था, वह निराशा की सर्दियों सरीखा था। चार्ल्स डिकिंस ने अपने समय के संदर्भ में इन पंक्तियों को 'टेल ऑफ टू सिटीज' में लिखा था। ऐसा नहीं है कि कोई स्प्रिंग ऑफ होप' और 'सीजन ऑफ लाइट' हमारे समय में नहीं रह गया है। 1972 में प्रारम्भ किया गया होशंगाबाद साइंस टीचिंग प्रोग्राम (HSTP), जयपुर जिले में अजमेर के नजदीक लापोड़िया गाँव और उस गाँव का वो गुमनाम स्कूल; अभी कुछ दिनों पहले तक हमारे बीच ए.पी.जे. अब्दुल कलाम थे और फिर अनिल सदगोपाल, यशपाल, कृष्ण कुमार जैसे जीवंत लोग—यही तो सही मायने में स्प्रिंग ऑफ होप' और 'सीजन ऑफ लाइट' हैं। वर्तमान समय में नयी पहल करने वाले दृष्टि संपन्न लोगों का यह उत्तरदायित्व है कि वे न केवल बेहतर और वैकल्पिक शिक्षा के मूल उद्देश्यों को पाने के संदर्भ में उपलब्ध करायें बल्कि सरकार को

भी सही नीति को कार्यान्वित करने के लिए बाध्य करें। हमें अपनी प्राथमिकतायें तय करनी होंगी। हमें यह तय करना ही होगा कि हमें क्या चाहिए—घर में मुफ्त का आने वाला टेलीविजन, मंगल-सूत्र, लैपटॉप या फिर घर के समीप स्कूल और पुस्तकालय। द्वंद से रहित प्राथमिकतायें हमें तय करनी होंगी— शायद तभी कुछ सुंदर के बचे रहने की आशा हम कर सकते हैं।

संदर्भ

लुईस एस.आर. वास (2011) द माइंड ऑफ जे. कृष्णमूर्ति मुंबई, जैको पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ-283

जिद्दु कृष्णमूर्ति (1984), स्कूल के नाम पत्र, भाग-2, वाराणसी कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, पृष्ठ-2

रवीन्द्र नाथ ठाकुर (1997), रवीन्द्र नाथ का शिक्षा दर्शन, नई दिल्ली, ग्रंथ शिल्पी, पृष्ठ-8

जिद्दु कृष्णमूर्ति (1984), स्कूल के नाम पत्र, भाग-1, वाराणसी कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, पृष्ठ-8

राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूप-रेखा 2005, नई दिल्ली: एन.सी.ई.आर.टी.

प्रीत रस्तोगी (2009)-कंसर्न्स, कंफ्लिक्ट एंड कोहेसन्स यूनिर्वसेलाईजेशन ऑफ एलिमेन्टरी एजुकेशन इन इंडिया, नई दिल्ली-ऑक्सफोर्ड, पृष्ठ-154

बेसिक्स इन एजुकेशन (2014), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली, पृष्ठ-15

सूर्यकांत त्रिपाठी और राधा चक्रवर्ती (2015), टैगोर द इंटरनल सीकर —फुटप्रिंट्स ऑफ ए वर्ल्ड ट्रैवलर, नई दिल्ली-विज बुक्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, पृष्ठ-231

सूर्यकांत त्रिपाठी और राधा चक्रवर्ती (2015), टैगोर द इंटरनल सीकर —फुटप्रिंट्स ऑफ ए वर्ल्ड ट्रैवलर, नई दिल्ली-विज बुक्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, पृष्ठ-89

रवीन्द्र नाथ ठाकुर (1997), रवीन्द्र नाथ का शिक्षा दशर्न, नई दिल्ली, ग्रंथ शिल्पी, पृष्ठ-16

सूर्यकांत त्रिपाठी और राधा चक्रवर्ती (2015), टैगोर द इंटरनल सीकर —फुटप्रिंट्स ऑफ ए वर्ल्ड ट्रैवलर, नई दिल्ली-विज बुक्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, पृष्ठ-227

कैथलीन एम. ओ. कोनेल (2012), रवीन्द्र नाथ टैगोर —द पोएट एज ऐडुकेटर-कोलकाता, विश्व भारती पब्लिशिंग डिपार्टमेंट, पृष्ठ-327

कैथलीन एम. ओ. कोनेल (2012), रवीन्द्र नाथ टैगोर —द पोएट एज ऐडुकेटर-कोलकाता, विश्व भारती पब्लिशिंग डिपार्टमेंट, पृष्ठ-229

कैथलीन एम. ओ. कोनेल (2012), रवीन्द्र नाथ टैगोर —द पोएट एज ऐडुकेटर-कोलकाता, विश्व भारती पब्लिशिंग डिपार्टमेंट, पृष्ठ-334

मीनाक्षी थापन (2006), लाइफ ऐट स्कूल-एन ईथनोमाफिक स्टडी, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड, पृष्ठ-212

जिद्दु कृष्णमूर्ति (1984), स्कूल के नाम पत्र, भाग-1, वाराणसी कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, पृष्ठ-53

प्रीत रस्तोगी (2009)-कंसर्न्स, कंफ्लिक्ट एंड कोहेसन्स यूर्निवसेलाईजेशन ऑफ एलिमेन्टरी एजुकेशन इन इंडिया, नई दिल्ली-ऑक्सफोर्ड, पृष्ठ-157

शशि शेखर, स्विट्जर्लैंड से आये सबक, हिंदुस्तान, 12 जून 2016

http://literature.org/authors/dickens.charles/two.cities/book.01/chapter.01.html

अनुपम मिश्र, शिक्षा: कितना सर्जन, कितना विसर्जन, अंतिम जन, वर्ष-4, अंक-6, जून 2015

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 23, अंक 1, अप्रैल 2016

समीक्षालेख

शिक्षा की गुणवत्ता के विकास में पाठ्यपुस्तकों की भूमिका: बिहार के सरकारी सेकेंडरी स्कूलों में पढ़ाई जानेवाली अर्थशास्त्र की पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा

खगेन्द्र कुमार* एवं **सुजीत कुमार****

सारांश

बिहार के सरकारी सेकेंडरी स्कूलों में पढ़ाई जानेवाली अर्थशास्त्र की पुस्तकें हमारी अर्थव्यवस्था भाग–1 एवं भाग–2 गंभीर अशुद्धियों से भरी पड़ी है। राज्य शैक्षिक शोध एवं प्रशिक्षण परिषद द्वारा विकसित ये पुस्तकें सर्वप्रथम क्रमश: वर्ष 2009 एवं 2010 में प्रकाशित हुई थी। तब से लेकर आजतक इन पुस्तकों का कई बार बिना सुधार के ही पुनमुर्द्रण किया जा चुका है। आज भी बच्चे इन्हीं पुस्तकों को पढ़ रहे हैं। वर्तमान आलेख में लेखक द्वारा इन पुस्तकों की गहन समीक्षा से प्राप्त कुछ गंभीर त्रुटियों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत आलेख बिहार में स्कूली पाठ्यपुस्तक के विकास में राज्य शैक्षिक शोध एवं प्रशिक्षण परिषद की भूमिका एवं सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले आम बच्चों के प्रति संवेदनहीनता को स्वत: ही उजागर करता है।

परिचय

स्कूलों में पाठ्यपुस्तक शिक्षक एवं विद्यार्थी के लिए एक महत्वपूर्ण शिक्षण उपागम है। आज के इस सूचना तकनीकी के युग में भी हमारे स्कूलों में पाठ्यपुस्तकों के बिना शिक्षा की कल्पना नहीं की जा सकती है। पाठ्यपुस्तक कक्षीय ज्ञान की सीमा को निर्धारित करती है तथा विद्यार्थियों को कक्षा एवं कक्षा के बाहर सीखने में सबसे अधिक मददगार साबित होती है।

*शिक्षा संकाय, पटना विश्वविद्यालय, पटना
**जे.आर.एफ. शिक्षा

बिहार में ज्यादातर बच्चे ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं, जहाँ की स्कूली शिक्षा मूल रूप से शिक्षकों तथा पाठ्यपुस्तकों पर टिकी हुई है। बिहार के माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ायी जानेवाली अर्थशास्त्र विषय की पाठ्यपुस्तकें राज्य शैक्षिक शोध एवं प्रशिक्षण परिषद द्वारा विकसित की गयी हैं। एक पायलॉट सर्वेक्षण से पता चला है कि अर्थशास्त्र की 9वीं एवं 10वीं कक्षाओं की पाठ्यपुस्तकें गंभीर त्रुटियों से भरी हुई है। सर्वे से यह भी पता चला है कि गंभीर त्रुटियों से संबंधित फीडबैक शिक्षकों द्वारा एस.सी.ई.आर.टी. (SCERT) को कई अवसरों पर दिया गया। एक प्रतिष्ठित हिन्दी दैनिक द्वारा 29 अगस्त 2014 को इसे मुख्य पृष्ठ पर छापा गया। फिर भी एस.सी.ई.आर.टी. (SCERT) ने नये सत्र के लिए पुनः उन्ही त्रुटियों के साथ वर्ष 2015–16 में पुस्तकों का पुनर्मुद्रण किया गया है। कक्षा 9 की पाठ्यपुस्तक हमारी अर्थव्यवस्था भाग–1 एवं कक्षा 10 की पाठ्यपुस्तक हमारी अर्थव्यवस्था भाग–2 का प्रथम संस्करण क्रमशः 2009 एवं 2010 में प्रकाशित हुआ था तबसे लेकर आजतक गंभीर त्रुटियों से पटे पाठ्यपुस्तकें ही पढ़ाई जा रही हैं। इस आलेख के लेखकों ने उपरोक्त पुस्तकों की समीक्षा कर त्रुटियों को पहचान करने की चेष्टा की है।

उपरोक्त पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा निम्न खंडों में प्रस्तुत की जा रही है।

अवधारणाओं से संबंधित त्रुटियाँ व अस्पष्टता

हमारी अर्थव्यवस्था भाग–1 में 6 इकाईयाँ है। इसकी प्रथम इकाई का शीर्षक ''बिहार के एक गाँव की कहानी'' है। इस ईकाई का उद्देश्य बिहार के एक उन्नत गाँव फतेहपुर के माध्यम से उत्पादन से संबंधित कुछ मूल विचारों से छात्रों को परिचित कराना है।लेकिन फतेहपुर गाँव का उदाहरण बच्चों के सामान्य अनुभव से परे बिहार के गाँव का एक अतिशयोक्तिपूर्ण चित्रण प्रस्तुत करता है। फतेहपुर गाँव की जगह बिहार के एक प्रतिनिधि गाँव का चयन कर उत्पादन से संबंधित विचारों से छात्रों को परिचित करना अधिक तक्रसंगत होता। इस ईकाई का उद्देश्य छात्रों को गाँव में उत्पादन की मुख्य क्रिया कृषि/खेती एवं सीमित स्तर पर किये जाने वाले अन्य क्रिया कलापों जैसे पशु पालन, मुर्गी पालन, डेरी, दुकानदारी आदि से परिचित कराना है साथ ही इच्छित वस्तुओं और सेवाओं को उत्पादित करने के लिए भिन्न संसाधनों के समायोजन प्रक्रिया समस्याओं की सही–सही समझ प्रदान करना इस ईकाई का उद्देश्य है।

इस पाठ के पृष्ठ 2 पर पावर ग्रिड की चर्चा है। हाल ही के वर्षो में सरकार द्वारा बिजली उत्पादन एवं रख–रखाव के लिए गाँव में ही पावरग्रिड की स्थापना की गई है। जहाँ तक पावरग्रिड की बात है, यह गाँव में तो हो सकता है लेकिन गाँव के लिए

पावरग्रिड की स्थपना किया जाना अस्वाभाविक ही नहीं अतिश्योक्तिपूर्ण है। दूसरे, पावरग्रिड का उपयोग बिजली के उत्पादन के लिए नहीं होता है। उसका उपयोाग संप्रेषण एवं रख-रखाव के लिए होता है। इस ईकाई में गाँव के बारे में निम्न तथ्यों को भी दर्शाया गया है, ''गाँव में छह प्राथमिक विद्यालय, एक माध्यविद्यालय, एक हाईस्कूल एवं साथ ही एक डिग्री कॉलेज भी है। गाँव में दो राजकीय प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और एक निजी हास्पिटल भी है'' (पृष्ठ-3) बिहार यहाँ तक कि देश के अन्य राज्यों के गाँवों का भी यह प्रतिनिधि चित्र प्रस्तुत नही करता है।

इसी ईकाई में एन.सी.ई.आर.टी. (NCERT) की अर्थशास्त्र के पुस्तक से रंगीन बॉक्स में सविता की कहानी (पृष्ठ-11) एवं किशोर की कहानी (पृष्ठ-14) उद्धृत की गयी है लेकिन स्त्रोत का जिक्र नहीं किया गया है।

ईकाई-2, मानव एक संसाधान, में प्रशिक्षण की भ्रामक तस्वीर पेश की गई है। इस ईकाई के पृष्ठ 30 पर प्रशिक्षण का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है। ''शिक्षा के द्वारा हम सिर्फ किताबी ज्ञान बढ़ा पाते हैं, इस ज्ञान को कौशल के साथ जोड़ने के लिए मनुष्य को विशेष ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। जब किसी खास काम के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है तो उसे तकनीकी ज्ञान से जोड़ते हैं''। इसी तरह सूचना तकनीक का विवरण भी त्रुटिपूर्ण प्रतीत होता है। प्रबंधन का भी विवरण त्रुटिपूर्ण है। ''शिक्षा के स्तर से प्रबंधन के स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है। उत्पादन के समस्त साधनों को जब हम एक जगह एकत्रित कर अच्छे ढंग से प्रयोग करते है तो यह कुशल संगठन का परिचायक है''। (पृष्ठ-32)

इस ईकाई में ग्रामीण और शहरी जनसंख्या शीर्षक के अन्तर्गत कहा गया है कि ''बिहार में शहरीकरण की स्थिति नाजुक है'' (पृष्ठ-40) यहाँ नाजुक शब्द का प्रयोग तर्क संगत नहीं है।

ईकाई-3 में गरीबी शीर्षक के अन्तर्गत गरीबी को परिभाषित किया गया है। जिसमें कहा गया है, ''गरीबी का अर्थ स्वच्छ जल और सफाई सुविधाओं का अभाव भी है साथ ही यह नियमित रोजगार की कमी और न्यूनतम शालीनता स्तर के अभाव को भी बतलाता है''। (पृष्ठ-53) इस प्रकार की परिभाषा गलत ही नहीं अनैतिक भी है। बच्चों में गरीबों के प्रति घृणा की प्रवृति पनप सकती है।

रैगनर नर्क्स के द्वारा दिये गये टर्म 'गरीबी का दुष्चक्र' की व्याख्या के लिए जो दो चित्र प्रस्तुत किया गया है वह स्पष्ट नहीं है। चित्र-3.4 में निर्धनता का दुष्चक्र (पृष्ठ-54)

के अन्तर्गत (क) चित्र को माँग पक्ष के अनुसार तथा (ख) चित्र को वास्तविक आय पक्ष के अनुसार स्पष्ट करना जरूरी है।

पुस्तक की चौथी इकाई, बेकारी, के पृष्ठ–88 पर रंगीन वॉक्स में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के संबंध में जानकारी दी गई है। इस बारे में प्रस्तुत तथ्यों में कई गलतियाँ है। ''राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना 27 राज्यों के 2000 जिलों में 80000 ग्राम पंचायत में लागू किया गया। वर्तमान में इस योजना का नाम परिवर्तित कर प्रधान मंत्री राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना करके 15 अगस्त 2006 से सम्पूर्ण देश में इसे लागू कर दी गयी है''। इस बॉक्स में दिये गये न्यूनतम मजदूरी का आंकड़ा भी सही प्रतीत नहीं होता। (पृष्ठ–88) जबकि NAREGA को पहले चरण में 27 राज्यों के 200 जिलों को शामिल किया गया न कि 2000 जिलों में। इस योजना का नाम 2 अक्टूबर 2009 को परिवर्तित करके पूरे देश में ''महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी एक्ट के नाम से लागू किया गया। न्यूनतम औसत मजदूरी का आंकड़ा भी सही नहीं प्रतीत होता है, औसत मजदूरी वर्ष 2006–07 में 65/– रुपये थी (स्त्रोत भारत 2014, पृष्ठ–754) भाषाई अशुद्धि पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

ईकाई– 5, कृषि, खाद्यान्न सुरक्षा एवं गुणवता, के अन्तर्गत बिहार में कृषि के पिछड़ेपन के कारण में ''डा. क्लाउस्टन का कथन बोल्ड अक्षरों में प्रस्तुत किया गया है। भारत में पिछड़ी जातियां तो हैं ही यहाँ पिछड़े हुए उद्योग भी हैं और दुर्भाग्यवश कृषि उनमें सबसे पिछड़ी है'' (पृष्ठ–99) यह कथन उपरोक्त विषय वस्तु से जुड़ा हुआ प्रतीत नहीं होता है। यह अवक्षेपित मालूम पड़ता है। स्कूली टेक्स्ट बुक में तथ्यों को सही संदर्भ में रखना आवश्यक होता है।

ईकाई 6, कृषक मजदूर, के पृष्ठ संख्या 128–130 पर पलायन को बोल्ड अक्षरों में परिभाषित करते हुये लिखा गया है कि पलायन का अर्थ होता है ''रोजगार की तलाश में एक जगह से दूसरे जगह जाना'' जबकि पलायन का अर्थ केवल एक स्थान से दूसरा स्थान प्रवासित होना है। बेरोजगारी के अलावा अन्य कारणों से भी पलायन हो सकता है। परिभाषा के पूर्व यह भी कहा गया है कि गरीबी, बेरोजगारी तथा भुखमरी के कारणों से (कृषक मजदूर) हीन भावना से ग्रसित हो जाते है। मजदूरों के जीवन–मरण के प्रश्न को इसप्रकार हीन भावना से जोड़कर देखना लेखको के संवेदनहीनता को प्रकट करता है।

कक्षा 10वीं में पढ़ाई जानेवाली अर्थशास्त्र की पुस्तक हमारी अर्थव्यवस्था, भाग–2, के पृष्ठ–17 पर BIMARU की व्याख्या में बिहार, मध्यप्रदेश, असम, राजस्थान तथा

उतर प्रदेश को लिया गया है जबकि उसी पुस्तक में पृष्ठ–109 पर BIMARU की व्याख्या में बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान, उड़ीसा को लिया गया है।

ईकाई–3, मुद्रा बचत एवं साख, में पृष्ठ 58 पर पत्र मुद्रा की चर्चा की गई है। इस चर्चा के अन्त में भारत में प्रचलित पत्र मुद्रा का चित्र (3.2) छापा गया है। चित्र में सबसे आगे दिखाया गया पत्र मुद्रा डालर है। पुस्तक प्रकाशन में इस प्रकार की गैर जिम्मेदारी से बचना चाहिए।

ईकाई–5, रोजगार एवं सेवाएं नामक अध्याय में व्यक्ति के परिश्रम एवं शिक्षा के साथ सेवा क्षेत्र का इस प्रकार से वर्णन किया गया है कि पूरी अवधारणा ही अस्पष्ट हो जाती है। उदाहरण स्वरूप ''...जब व्यक्ति अपने परिश्रम एवं शिक्षा के आधाार पर जीवकोपार्जन के लिए धन एकत्रित करता है, एकत्रित धन को जब पूँजी के रूप में व्यवहार किया जाता है और उत्पादन के क्षेत्र में निवेश किया जाता है तो सेवा क्षेत्र उत्पन्न होता है। अत: रोजगार एवं सेवाएं एक दूसरे के पूरक हैं अर्थात् रोजगार वृद्धि से सेवा क्षेत्र का भी विस्तार होता है''। (पृष्ठ–99) इस अध्याय में प्रस्तुत व्याख्या से लगता है कि रोजगार एवं सेवाएँ एक दूसरे के पूरक हैं जबकि सेवा अर्थव्यवस्था के तीन क्षेत्रों में से एक है। अन्य क्षेत्र हैं कृषि एवं उद्योग। रोजगार इन सभी से जुड़ा हुआ है।

सेवा क्षेत्र की भूमिका शीर्षक के अन्तर्गत भी सेवा क्षेत्र को सीधे–सीधे रोजगार से जोड़ दिया गया है। जैसे ''अर्द्धविकसित और विकासशील देशो में जनसंख्या का अधिक्य होता है तथा वहाँ उत्पादन के अन्य साधन पूर्णत: उपलब्ध नहीं होते हैं जिसके कारण वहां बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न होती है। सेवा क्षेत्र के विकास से अधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध होते हैं''। (पृष्ठ–101) उपरोक्त अवधारणा में सेवा क्षेत्र की भूमिका की व्याख्या सेवा प्रदाता के रूप में की गयी है। वही आगे लिखा गया है ''यदि भारत में भी उच्चकोटी के उत्पादन क्षेत्रों को कारगर किया जाए तो यहाँ के उपलब्ध मानवीय संसाधनों के द्वारा आर्थिक विकास की गति को और अधिक तेज किया जा सकता है'' (पृष्ठ–101) यहां पर उच्चकोटि के उत्पादन का मतलब अस्पष्ट है। उद्धृत अंश में स्पेलिंग की अशुद्धि के साथ–साथ भाषा की अशुद्धि भी देखी जा सकती है।

इसप्रकार पूरी इकाई में ही रोजगार और सेवा को एक–दूसरे के साथ पूरक के रूप में जोड़ने का प्रयास किया गया है, जो कि सर्वथा अनुचित प्रतीत होता है। साथ ही उच्चकोटि उत्पादन का अर्थ भी अवश्य ही स्पष्ट किया जाना चाहिये।

आधुनिक मंदी का सेवा क्षेत्र पर प्रभाव शीर्षक के अन्तर्गत मंदी का प्रभाव सेवा क्षेत्र पर पर अवश्य ही दिखाया जाना चाहिये। संदर्भ से इतर कई बातें प्रस्तुत की गई हैं। जैसे- ''जैसे-जैसे युगों में परिवर्तन होता जाता है, वैसे-वैसे विकास की प्रक्रिया परिवर्तन के साथ बढ़ती जाती है। अर्थव्यवस्था से पुरानी चीजों को विलुप्त होना इसकी पहचान है। समय परिवर्तन के साथ व्यक्ति की मांग में परिवर्तन हो जाता है, व्यक्ति फैशन का शिकार हो जाता है।'' (पृष्ठ-113) पाठ्यपुस्तकों में संदर्भ से इतर की गई चर्चाएँ बच्चों को दिगभ्रमित करती है। पाठ्यपुस्तक में सही संदर्भ सहित तथ्यों की सटीक चर्चा आवश्यक होती है।

ईकाई-6, वैश्वीकरण के पृष्ठ-124 पर वैश्विक गाँव की समझ रंगीन बॉक्स में प्रस्तुत की गई है जो इस प्रकार है ''वैश्वीकरण के प्रसार और प्रभाव के कारण अब सभी देशों में एक ऐसे आवासीय स्थान का निर्माण किया जा रहा है, जहाँ आवास की सभी आधुनिकतम संसाधन उपलब्ध रहते हैं और उस आवासीय स्थान में विश्व के सभी देशों के व्यक्तियों को उनकी इच्छा से स्वतंत्र रूप में बसने की सुविधा होती है। ऐसा आवासीय स्थान जहाँ विभिन्न देशों, विभिन्न विचारों और विभिन्न धार्मिक मान्यताओं के सभी लोगों को रहने की व्यवस्था की जाती है उसे ही हम वैश्वीक गाँव कहते हैं। भारत में भी मुंबई से कुछ दूर एक प्रमुख औद्योगिक समूह के द्वारा वैश्विक गाँव का निर्माण किया गया है। यद्यपि वैश्विक गाँव की यह कल्पना अबतक पूर्ण रूप से साकार नहीं हो सकी है''। (पृष्ठ-124) वैश्विक गाँव की ऐसी गलत समझ परोसना अत्यन्त सोचनीय है। बोल्ड में लिखा गया 'वैश्विक गाँव' शीर्षक में वैश्विक का स्पेलिंग भी गलत है।

चित्रों की अस्पष्टता एवं शाब्दिक एवं भाषाई अशुद्धियाँ: कक्षा 9वीं एवं 10वीं की पुस्तकें हमारी अर्थव्यस्था भाग-1 और 2 पाठ्यपुस्तकों में लगभग सभी चित्र धूमिल और अस्पष्ट हैं। साथ ही कई चित्रों का चयन विषय वस्तु से या तो मेल नहीं खाता है या विषय वस्तु को समझने में मदद नहीं कर पाता है। उदाहरण स्वरूप अर्थव्यवस्था भाग-1 के ईकाई-3, गरीबी के पृष्ट-65 पर मध्याह्न भोजन से संबंधित एक चित्र दिखाया गया है। चित्र संख्या 3.6 का शीर्षक है ''बिहार के एक स्कूल में अधिकारी की उपस्थिति में मध्याह्न भोजन का बँटवारा बच्चों के बीच किया जा रहा है''। उपरोक्त चित्र में अधिकारी की उपस्थिति दिखाना क्यों जरूरी है जब यह स्कूल द्वारा चलाया जाने वाला दैनिक कार्य है। मध्याह्न भोजन की समस्याओं की जड़ में नौकरशाही ही है लेकिन चित्र अकारण ही नौकरशाही की सही तस्वीर परोसने की कोशिश कर रहा है। लगता है

कि पुस्तक की दुर्गति का कारण भी पुस्तक निर्माण प्रक्रिया में राज्य शैक्षिक शोध एवं प्रशिक्षण परिषद नौकरशााही का हस्तक्षेप है। बिहार के सरकारी स्कूलों की 9वीं एवं 10वीं कक्षाओं में पढ़ाई जानेवाली अर्थशास्त्र की दोनों पुस्तकों में शाब्दिक एवं भाषाई अशुद्धियों की भरमार है। कुछ उदाहारण नीचे दिये जा रहे है।

सर्वोपरि (सर्वोपरी), प्रेरणा (प्ररेणा), रिजर्व (रिर्जव), स्वेच्छा (स्वेक्षा), उच्चकोटि (उच्चकोटी), अपेक्षाकृत (अपेक्षाकृत) सरीखे ढेर सारे शब्दों की वर्तनी में त्रुटियां है। अनेक जगहों पर भाषाई गलतियाँ भी हैं जिसे पूर्व में ही उजागर किया गया है।

इन पाठ्यपुस्तकों में प्रयुक्त सभी आंकड़े लगभग पांच साल पुराने हैं। पाठ्यपुस्तकों में अद्यतन आकड़ों का प्रयोग आवश्यक है। इसके बिना संगठनों के वर्तमान अर्थिक स्थितियों का पता नहीं चल पाता है। अत: पाठ्यपुस्तकों में दिए गए आंकड़ों को अद्यतन बनाने हेतु नियमित संशोधन की व्यवस्था होनी चाहिए।

संदर्भ

हमारी अर्थव्यवस्था भाग–1 (कक्षा 9 के लिये) पुनर्मद्रण 2015, बिहार टेक्स्टबुक कॉरपोरेशन, पटना।

हमारी अर्थव्यवस्था भाग–2 (कक्षा 10 के लिये) (पुनमुर्द्रण 2015) बिहार टेक्स्टबुक कॉरपोरेशन, पटना

श्रेइयर, मारग्रीट (2012), क्वालिटेटिव कंटेट एनालिसिस, सेज पब्लिकेशन्स, लंदन

भारत इयरबुक 2014, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

अर्थशास्त्र–कक्षा 9 के लिए पाठ्यपुस्तक (प्रथम संस्करण 2006) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली

अर्थिक विकास की समझ–कक्षा 10 के लिए समाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तक (प्रथम संस्करण 2007) एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

बास, एच. हैंस, 'रैगनर नर्क्स डेवलपमेंट थ्योरी: इन्फ्रलूएन्सेज एंड परसेप्सन्स', www.hs-bremen.de/internet/hsb/struktur/mitabeiter/ bass/publikationen/ downloadangebotenurkse_book_2008_bass.pdf